RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 58 अंक : 09 प्रकाशन तिथि : 25 अगस्त कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 सितम्बर 2021

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

हुकुम सिंह कुम्पावत (आकडावास, पाली)

शिव ज्वैलर्स

विश्वसनीयता में एक मात्र नाम

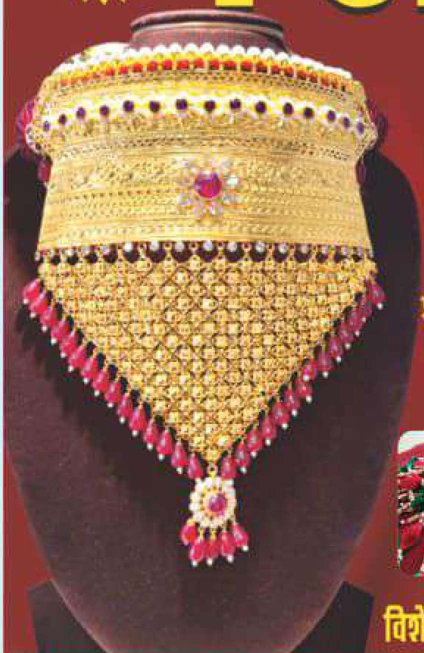

22/22 कैरेट हॉलमार्क आभूषण,
न्यूनतम बनवाई दर पर

शुद्ध राजपूती आभूषण (बाजूबन्द, पूछी, बंगडी, नथ आदि)
तैयार उपलब्ध एवं ऑर्डर से भी तैयार किये जाते है।

विशेषज्ञ :- सोने व चाँदी की पायजेब, अंगूठी, डायमण्ड, कुन्दन के आभूषण, बैंकॉक आईटम्स आदि

जी–1, सफायर कॉम्पलेक्स, जैन मेडिकल के सामने,
खातीपुरा रोड़, झोटवाड़ा, जयपुर
मो. 7073186603, 8890942548

संघशक्ति

4 सितम्बर, 2021

वर्ष : 57 अंक : 09

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	06
☞ मेरी साधना	✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली	08
☞ राजपूत और स्वतंत्रता संग्राम	✍ कर्नल हिम्मतसिंह पीह	12
☞ सत्य ही ईश्वर है	✍ ब्रिगेडियर मोहनलाल (से.नि.)	17
☞ पृथ्वीराज चौहान-इतिहास की धुंध पर एक....	✍ श्री विरेन्द्रसिंह राठौड़	18
☞ जीवन का उद्देश्य और संघ	✍ कृपाकांक्षी	20
☞ छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	✍ स्वामी जगदात्मानन्द	22
☞ शाको शेखावत संग्रामसिंह को	✍ सम्पतसिंह धमोरा	27
☞ काम करो	✍ श्री ईश्वरसिंह ढीमा	31
☞ विचार-सरिता (पञ्चषष्टिः लहरी)	✍ विचारक	32
☞ पिता	✍ श्री डीगेन्द्र प्रतापसिंह	33
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

संभागीय बैठकें :

संघ के संभाग व प्रान्त क्षेत्र का दायित्व जो सौंपा गया है, उनको अपने दायित्व के सम्बन्ध में दिशा-निर्देश देने के लिए बैठकें आयोजित की गई। बाड़मेर संभाग की बैठक 10 जुलाई की शाम आलोक आश्रम में सम्पन्न हुई जिसमें संभाग के स्वयंसेवकों को संघ के संरक्षक माननीय भगवानसिंहजी ने सम्बोधित किया। नई ऊर्जावान टीम अपने कार्यक्षेत्र में लक्ष्य लेकर धूम मचाए और सात्त्विक शक्ति का प्रसार करे। प्रत्येक स्वयंसेवक कुछ न कुछ जिम्मेवारी लेकर कार्यक्षेत्र में उतरे और संघ का संदेश लोगों तक पहुँचाए। संभाग प्रमुख ने संगठनात्मक स्वरूप में किए गये परिवर्तन का विवरण प्रस्तुत किया। सभी के कार्य की नियमित समीक्षा का कार्यक्रम बना। महामारी के निर्देशों की पालना करते हुए शाखाओं और शिविरों के आयोजन का निश्चय किया गया।

जयपुर संभाग की बैठक को संघप्रमुखश्री लक्ष्मणसिंह ने सम्बोधित किया और कहा कि संघ कार्य अदृश्य शक्तियों द्वारा सम्पादित हो रहा है जो पू. तनसिंहजी व पू. नारायणसिंहजी जैसे महापुरुषों की तपस्या का फल है। हम तो निमित्त मात्र हैं। कोई दायित्व मिला है तो दायित्व को निभाते हुए अहंकार न आने दें, यही सोचें कि कार्य तो होना है, मुझे तो कृपा कर परमात्मा ने माध्यम बनाया है। भिखारी की आत्मकथा पुस्तक के 'तुम सहयोगी हो' प्रकरण का पठन किया गया, यह समझने के लिए कि सहयोगी को कैसा होना चाहिए।

जैसलमेर के कार्यालय तनाश्रम में संभागीय बैठक का आयोजन हुआ। संघ कार्य को विस्तार देने के लिए शाखाओं, शिविरों व अन्य कार्यों के आयोजन की जिम्मेदारियाँ दी गई। मंडल प्रमुखों व प्रांतीय सहयोगियों के दायित्व सौंपे गए और संभाग पुरुष ने संगठनात्मक बदलाव की जानकारी दी।

जोधपुर संभाग की बैठक संभागीय कार्यालय तनायन में सम्पन्न हुई। संभाग प्रमुख ने संगठनात्मक स्वरूप व नये कार्य विभाजन की जानकारी दी। कार्य विस्तार की योजना बनाई गई। बीकानेर संभाग की बैठक कार्यालय नारायण निकेतन में सम्पन्न हुई। सभी बिन्दुओं पर विचार किया व कार्य योजना बनी।

सौराष्ट्र कच्छ संभाग की बैठक सुरेन्द्रनगर स्थित शक्तिधाम में हुई। जालोर संभाग की बैठक सिसरवादा गाँव में हुई। सभी संभागीय बैठकों की तरह सभी बिन्दुओं पर चर्चा हुई। विगत 6 माह के कार्य की समीक्षा की गई। नागौर संभाग की बैठक कुचामन स्थित आयुवान निकेतन में हुई। बालोतरा संभाग की बैठक वीर दुर्गादास राजपूत छात्रावास में हुई। मध्य गुजरात संभाग की बैठक काणेटी में हुई। महाराष्ट्र संभाग की बैठक वर्चुअल माध्यम से सम्पन्न हुई। गोहिलवाड़ संभाग के स्वयंसेवक खोडियार मंदिर में मिले व सभी बिन्दुओं पर चर्चा हुई। मेवाड़-वागड़ तथा मेवाड़-मालवा संभाग की बैठक उदयपुर में हुई।

संभाग प्रमुखों व प्रान्त प्रमुखों की बैठक :

20 जुलाई को संघप्रमुखश्री ने सत्र में बनाए गये संभाग प्रमुखों व केन्द्रीय कार्यकारियों की वर्चुअल बैठक ली। इसमें संभाग प्रमुखों ने अपने क्षेत्र की बैठकों का ब्योरा दिया। माननीय संघप्रमुखश्री ने सबके दायित्व का महत्त्व समझाया तथा नियमित समीक्षा पर जोर दिया। कार्य हेतु आवश्यक निर्देश दिए गये। शिविरों के प्रस्ताव तैयार करने को भी कहा गया। 22 जुलाई को सभी प्रांत प्रमुखों की वर्चुअल बैठक रही जिसमें सभी का परिचय हुआ। उनके दायित्व का महत्त्व समझाकर कार्य योजना को जमीन पर उतारने व सम्पर्क बनाए रखने के निर्देश दिए।

गुजरात में :

27 जून को सिद्धपुर में सम्पर्क यात्रा रही। 3 जुलाई को गाँधीनगर में सम्पर्क यात्रा रही। 4 जुलाई को पीथापुर, लेखावाड़ा, पालज और माणसा में सम्पर्क किया। 11 जुलाई को बालवा में चिंतन बैठक रखी गई। 12 जुलाई को कबोई में, 18 जुलाई को मोढेरा में, 18 जुलाई को ही वडावली में,

(शेष पृष्ठ 21 पर)

चलता रहे मेरा संघ

{संघशक्ति प्रांगण में आयोजित विशेष शिविर में दिनांक 30.9.2007 को दोपहर 2 बजे के कार्यक्रम में संघप्रमुख माननीय भगवानसिंहजी के उद्बोधन का संक्षेप।}

हमने आज सुबह उन परिस्थितियों का जायजा लिया जिसके कारण हम इस शिविर में बुलाने के पात्र बने। हमारा एक जीवन उस समय के पहले का है, एक उस समय का है तथा एक उसके बाद का। थोड़ा-थोड़ा उनमें भेद है। एक बालक जब जन्म लेता है तो वर्तमान जीवन से अपरिचित होता है। वह निर्दोष होता है। पिछले जन्मों के प्रभाव अभी प्रकट नहीं हुए होते हैं। धीरे-धीरे वह प्रकट होने लगता है और फिर इस संसार में पायी संगति जैसा होता रहता है। बचपन से ही वह समझने लगता है कि हम नाराज हैं या प्रसन्न। वहीं से वह अपने आपको छिपाना प्रारम्भ हो जाता है। उसकी जो बात नाराजगी प्रकट करेगी, उसे वह छिपाता है। तब फिर उसकी निर्दोषता समाप्त होनी प्रारम्भ हो जाती है।

हम जब पात्र बने थे तो भाव था-'आए हैं रमवाने भष्म'। लेकिन बाहर के प्रभाव से यह भाव कम हो जाता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ के लोगों में जो सरलता थी, वह नहीं रहती। कुछ अंशों में इसका कारण हम लोग भी हैं। जाने-अनजाने हमारे अभावों का प्रभाव नए आने वाले लोगों पर प्रतिबिम्बित होता है। इसी प्रकार परम्परा चलती रहती है। हमारी बाहर की संगति धीरे-धीरे शिविर में प्राप्त संस्कारों पर आवरण चढाती रहती है। संघ के वातावरण से दूरी का ऐसा परिणाम आता है।

हमारे सोए हुए सद् संस्कारों को जगाने के लिए अनुकूल वातावरण चाहिए। अच्छा तो सभी बनना चाहते हैं, सद् संस्कारी बनना चाहते हैं पर कहाँ प्रवृति हो व कहाँ निवृति हो इसका पालन नहीं हो पाता। जहाँ निवृति होनी चाहिए वहाँ अगर हम प्रवृत होते हैं तो सद् संस्कार निर्माण कैसे हो पाएँगे। तब 'समानी व: आकुति:' की बात बन नहीं पाती।

एक स्वयंसेवक शिविर के बाहर से जो लेकर आता है, वह शिविर के वातावरण के कारण, शिविर की संगति के कारण दब जाता है और अच्छाई उभर आती है। लेकिन बाहर जाते ही, वहाँ की संगति से उभरी हुई अच्छाई धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है और पूर्व की स्थिति उभर आती है। यही परवशता है, हमारी विवशता है जो संघ में हमारी गति की बाधक बनती रहती है। संस्कार निर्माण के वातावरण से दूर रहेंगे तो पत्थर के आवरण से बन जाएँगे।

हमारे लक्ष्यहीन जीवन को एक लक्ष्य मिल गया, संघ में ऐसी हम सभी की अनुभूति थी। पर आज कहते हैं कि संघ कार्य करना तो चाहते हैं पर हो नहीं पाता। क्यों? क्योंकि हम माया में उलझ जाते हैं। संत पुरुष कहते हैं कि मनुष्य पर, साधक पर प्रकृति का प्रभाव रहता है, पर वह मायावी है। हम यह जानते हैं फिर भी माया को भेद नहीं सकते। यहाँ आकर हम कुछ सीमा तक माया से ऊपर उठे हैं। पर यहाँ आने के पश्चात की हमारी प्रगति क्या है, क्या इस पर चिंतन चलता है? हम यह जानते हैं कि संघमय वातावरण से दूर रखने वाला बाधक क्या है, लेकिन फिर भी उसमें बह जाते हैं।

हमारे उत्थान और हमारे पतन के कारण बाहर नहीं, हम में ही हैं। इसे भली प्रकार समझ कर निरंतर आत्मावलोकन करने से राह आसान हो जाती है। इन विशेष शिविरों में परस्पर सान्निध्य और शिविर वातावरण से कठोर आवरण की पर्त हल्की होगी। संसार के संगदोष से बच सकेंगे। बलवान प्रकृति से संघर्ष के लिए, सत्संगति चाहिए। फिसलन से बचने के लिए सत्संगति आवश्यक है। शिविर वह सत्संगति है। यहाँ आत्मावलोकन व आत्मदर्शन का अवसर है। इसे खोएँ नहीं। न हम इस अवसर को और न मनुष्य जीवन को निरर्थक खोएँ। संघ में आगे बढने पर एक झलक मिली ऊर्ध्वगामी साधना की, पर उसके लिए तड़फ जगाने की आवश्यकता है। ❑

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

अर्जुन और कृष्ण के जो अलौकिक सम्बन्ध थे, वैसे सम्बन्धों की आवश्यकता पूज्य श्री तनसिंहजी ने श्री क्षत्रिय युवक संघ में भी महसूस की और वैसे सम्बन्ध कृष्णार्जुन की भाँति सखाभाव का निर्माण करने पर ही संभव है, इसलिए पूज्य श्री तनसिंहजी ने संघ में सच्चे सखाभाव के निर्माण पर जोर दिया।

श्री क्षत्रिय युवक संघ में पूज्य श्री तनसिंहजी के सम्पर्क में जो लोग आये, उनको उन्होंने दो वर्गों में विभक्त किया है-पहली पीढी व दूसरी पीढी। संघ में सखाभाव का निर्माण हो, यह तो दोनों पीढियाँ चाहती थी, पर किस पीढी ने किस रूप में सखा-भाव को लिया यानी समझा, इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपनी एक आदर्श-कृति को सम्बोधित करते हुए जो कहा, उन्हीं की जुबानी-

''सखा भाव के सृजन में दोनों पीढियाँ कार्य कर रही हैं। तुम्हारी पीढी तो सखाभाव के लिए समर्पण की बात कहती है, कृतज्ञता की बात कहती है, लेकिन उनकी पीढी सखाभाव के लिए समस्त बाह्याडम्बरों को हटाने के नाम पर मर्यादाएँ तोड़कर समीप आने के प्रयत्न में संलग्न है। उनकी हास्यास्पद अवस्था यह है कि जितना अपने आपको इस तरीके से नजदीक आना मानते हैं, उतना ही वे दूर जाते जा रहे हैं। अशिष्टता, उदण्डता, उपेक्षा और उपकारों को भुलाकर समानता का विचार ही उनकी नजरों में सखा भाव का सृजन करना है, किन्तु आज कोई ऐसा भी शेष नहीं है, जो उन्हें यह बता सके कि यह तो सखा भाव के विकार हैं। तुम चले गये। तुम्हारा जीवन एक स्मृति मात्र रह गया। तुम्हारे नाम का आज कोई स्मारक भी नहीं है, पर मेरे अन्त:करण में तुम्हारा एक ध्रुव स्मारक बना हुआ है, जो किसी भी वजह से टूट नहीं सकता। तुम्हारी पीढी जरूर बची हुई है, किन्तु वह संख्या में इतनी थोड़ी है कि उनकी ओर किसी की दृष्टि भी नहीं जाती। तुम्हारी पीढी की विशेषता यह है कि वे कोई शब्दों से नहीं समझाया करती। समझाने का उनका तरीका विशिष्ट है। वे जिस किसी बात को समझाना चाहते हैं, उसे वे कर दिखाते हैं। उनके आचरण में उनकी वह शिक्षा सदैव जागृत रहती है, किन्तु दूसरी ओर स्थिति यह है कि जो स्वयं इतना आत्मकेन्द्रित हो गया है कि किसी के जीवन अथवा आचरण को सीखने समझने के दृष्टिकोण से देखता ही नहीं, वे साक्षात् भगवान से भी प्रेरणा नहीं ले सकते। तुम्हारी और उनकी पीढी के अन्दर इतना अन्तर पड़ गया है कि अब यह सम्भव नहीं कि दोनों पीढियाँ साथ रह सके। इसीलिए मैं आज बेशर्म होकर उन्हें अपनी वस्तुस्थिति से अवगत कराकर उन्हें कोसता हूँ। किन्तु मेरा कोसना तो हवा में विलीन हो जाता है। देखता हूँ यह सिलसिला कब तक चलता रहेगा।

''लगभग आठ वर्ष बाद आज मुझे अपने कार्य में एक नवीन बात दिखाई देती है कि तुम्हारी पीढी सक्रिय सी होती हुई दिखाई देती है। तुम्हारी पीढी के सक्रिय होने का अभिप्राय है मेरे निर्माण काल के स्वर्णिम युग का प्रत्यावर्तन। उस नवयुग के प्रत्यावर्तन के लिए मैं सर्वाधिक चिन्तित इसलिए हूँ कि इससे कुछ बेजोड़ बातें होने वाली हैं जो निम्नलिखित है :-

1. तुम्हारी पीढी जिन्दा रहे, क्योंकि केवल तुम्हारी पीढी ही ऐसी है जो मेरे इस समाज की सर्वाधिक बहुमूल्य धनराशि है। कोई भी देश, कौम केवल ऐसी ही पीढी के बलबूते पर उठा करता है। जब से तुम्हारी पीढी लुप्त होने लगी थी, तब से ही मैं इस समाज के भविष्य के सम्बन्ध में चिन्तित था, किन्तु अब देखता हूँ कि इतिहास की बालू रेत पर कुछ ऐसे चरणचिह्न उभरते हुए दिखाई देते हैं, जिनकी मुझे बड़ी प्रतीक्षा है।

2. उनकी पीढी को समाप्त करने का केवल यही

तरीका है, कि तुम्हारी पीढी में जीवन आये। किसी भी लकीर को छोटी करने का सम्माननीय तरीका है, उसके पास ही बड़ी लकीर खींच दो। मेरी आदर्श कृति! तुम्हारी पीढी ही वह बड़ी लकीर है, जिसे खींचने के पीछे मेरे सहयोगियों का लगभग आठ वर्ष का प्रयत्न जुड़ा हुआ है।

3. कोई कृतज्ञ होकर किसी को कृतज्ञ बनना सिखा सकता है। कोई महान बनकर ही किसी को महानता की शिक्षा दे सकता है। तुम्हारी आदर्श पीढी ही मुझे एक आदर्श निर्माता का श्रेय देगी और आने वाली पीढी के निर्माण की यही सुरक्षा है कि शिक्षण जब विनम्रता सिखाए तो सबसे पहले वही विनम्र बने, इसीलिए तुम्हारी पीढी के जागृत होने से शिक्षण के भविष्य का कार्य निश्चित और महान बन सकेगा। उस निर्माण के लिए मुझे कभी चिन्तित नहीं रहना पड़ेगा।

4. मेरे साथियों के सम्बन्ध में एक बड़ी चिन्ता मुझे खाए जा रही थी, कि भविष्य में किसी योग्य नेतृत्व का सृजन किस प्रणाली से हो सकेगा? लेकिन अब मुझे विश्वास हो गया है कि तुम्हारी पीढी का कोई भी व्यक्ति मेरी महान् परम्पराओं के साथ दगाबाजी नहीं कर सकेगा और मैं भीख माँगते-माँगते शान्तिपूर्वक मर सकूंगा कि मैंने भिखारी परम्परा को जीवित रखने का अमर और वैज्ञानिक प्रयत्न किया।

5. तुम विश्वास रखो, तुम्हारी पीढी के जीवित रहने का अर्थ है, उत्तरोत्तर उन्नति को प्राप्त करना। हमने अब तक हमारे जिस किसी अंश को शुद्ध, पवित्र और रूपान्तरित किया है उसके बाद भी बहुत ऐसा अंश है, जो परिमार्जित होने के लिए प्रतीक्षा करता आ रहा है। नवीन प्रगति तभी समीव हो सकती है, नवीन शक्तियाँ तभी प्राप्त कर सकते हैं और नवीन जागृति तभी सम्भव हो सकेगी- जब हम आज तक अपने सोये हुए अंश को जागृत कर सकने में समर्थ हो सकेंगे। इस प्रकार की दिव्य आत्मिक साधना के लिए केवल तुम्हारी पीढी ही आदर्श साधक बन सकती है।

6. तुम्हारी पीढी को जीवित न रखने का अभिप्राय है, हम कहीं विनम्रता, सहज समर्पण, शरणागत भाव आदि से जो कुछ हासिल कर सकते हैं, उसकी क्षमता को सदा के लिए न खो दें। अत: दिव्य संभावनाओं के लिए मानवीय श्रद्धा केवल तुम्हारी ही पीढी से मिल सकती है, इसलिए तुम और तुम्हारी पीढी मुझे अत्यन्त प्रिय है, पुण्य लोकों से भी अधिक प्रिय है।

''तुम अब इस संसार में नहीं हो पर तुम्हारी स्मृति मेरे मानस पटल पर सदा आकाश की भाँति छाई रहती है। कुछ सहयोगियों ने तुम्हारी पार्थिव स्मृति को बनाए रखने के लिए किसी सहकारी समिति के गठन का विचार किया था। समिति का गठन भी हुआ किन्तु वह अब तुम्हारी ही भाँति अनन्त निद्रा में सो गई है। जिन्होंने तुम्हारी सूक्ष्म स्मृति से सम्बन्ध तोड़ दिया है, उनके लिए यह उपयुक्त ही था कि वे इसी प्रकार की कोई समिति का गठन करते किन्तु तुम्हारी वास्तविकता सूक्ष्म कर्म-साधना में थी। उस साधना के बिना ऐसे जड़ प्रयत्न चाहे कितने बड़े और प्रभावशाली हों, संजीवनी शक्ति और प्रेरणा के लिए नितान्त ही अयोग्य सिद्ध हुआ करते हैं।

''तुम कभी मेरी स्मृति से विलीन नहीं हुए, क्योंकि मेरे सामने सदा यह प्रश्न रहा है, कि तुम मेरी आदर्श कृति रहे हो अथवा तुम मेरे आदर्श निर्माता हो। आज भी मैं एक निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँचा हूँ। मेरा अहं भाव कहता है, 'तुम मेरी कृति हो और आदर्श वृति हो' और मेरी विनय एवं कृतज्ञता कहती है, 'तुम मेरे निर्माता हो' तुमने निर्मित होकर मुझे निर्माता होने का श्रेय प्रदान किया। अब मैं तुम्हारा जीवन कर्म क्षेत्र में ढूंढने का प्रयत्न कर रहा हूँ।''

(क्रमश:)

अविश्वास आदमी की प्रवृत्तियों को जितना बिगाड़ता है, विश्वास आदमी को उतना ही बनाता है।

– धर्मवीर भारती

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली

अवतरण–93

भोजन में पोषक तत्वों की अप्राप्ति और विश्राम अभाव वे वस्तुएँ नहीं जिनसे मेरे शारीरिक अवयवों का गठन, माँस–पेशियों की पुष्टि, दृढता और वृद्धि में बाधा पहुँचती हो,– कारण कि इच्छाशक्ति द्वारा समर्पित शारीरिक व्यायाम इस कमी को पूरा करने में पर्याप्त समर्थ है। तब दृढ भावना–शक्ति के साथ खेलों के अभ्यास द्वारा दैहिक शक्ति–संचय करना मेरी साधना का आवश्यक उपकरण होना चाहिए, इसलिए कि शरीर और स्वस्थ मन द्वारा स्वस्थ जीवन का निर्माण करना मेरी साधना के जीवन और स्वास्थ्य के लिए भी तो आवश्यक है।

आहार की कमी पूरी करे व्यायाम।
स्वस्थ मन, शरीर करे जीवन स्वस्थ।।

साधक इस अवतरण में कहता है कि पोषक आहार और विश्राम के अभाव में स्वस्थ जीवन निर्माण के लिए श्रम, खेल, व्यायाम द्वारा या अन्य किसी भी प्रकार से आनन्द के साथ की गई मेहनत से पोषक आहार और विश्राम की कमी पूरी हो जाती है। श्रम द्वारा तन और मन दोनों स्वस्थ रखे जा सकते हैं। जीवन के विकास के लिये स्वस्थ मन और तन आवश्यक होते हैं।

इस अवतरण में संघ के प्रारम्भ के समय के संजोग, परिस्थिति का अनुभव नजर आ रहा है जब शिविरों में पोषक आहार की तो बात दूर रही, कभी–कभी तो भोजन की पूरी व्यवस्था करनी भी कठिन हो जाती थी। एक–आध समय का भोजन छूट जाए या मर्यादित भोजन ही मिले, ऐसा मेरा अनुभव तो नहीं है लेकिन ऐसा होता था यह सुना जरूर है। ऐसे समय में खुराक की, पोषक आहार की कमी पूर्ण करने हेतु इच्छाशक्ति द्वारा समर्पित व्यायाम पूरा–पूरा समर्थ है।

अब परिस्थिति बदल चुकी है। अब शिविरों में आहार की कमी नहीं रहती। विश्राम का अभाव अवश्य रहता है। आज समाज ने आर्थिक विकास किया है। सामाजिक प्रवृतियों की ओर ध्यान देकर थोड़ा आर्थिक सहयोग करने वाले भी समाज में हैं। संघ की प्रवृति पर भी यह बात लागू होती है। समाज के साधन सम्पन्न सज्जन संघ प्रवृति के शिविरों की व्यवस्था के लिए उदार दिल से सहयोग करते हैं। यह प्रवृति खूब अच्छी है, ऐसा मानने वालों ने अलग–अलग क्षेत्रों में उदार दिल से शिविरों में सहयोग किया है। आर्थिक सहयोग के साथ थोड़ा वैचारिक और शारीरिक सहयोग करने की भी सोचें तो प्रवृति में और समाज में अच्छा परिवर्तन आए। आर्थिक विकास के साथ–साथ हमारा वैचारिक विकास भी हो ऐसी जगत नियंता से विनयपूर्वक नम्र प्रार्थना करें।

अर्क– वैचारिक क्रांति ही सच्ची क्रांति ला सकती है।

अवतरण–94

मेरी साधना बालकों से विश्वास और पवित्रता, तरुणों से इच्छा और क्रिया तथा प्रौढों से ज्ञान और धैर्य ग्रहण कर फिर बालकों में ज्ञान और क्रिया, तरुणों में धैर्य और विश्वास तथा प्रौढों में इच्छा और पवित्रता को बाँट देती है। तब बालक, तरुण और प्रौढ मिलकर उस संघ–शरीर का निर्माण करते हैं जो बालक, युवा और प्रौढावस्था की सभी विशेषताओं से ओतप्रोत रहता है और जिसका प्रत्येक घटक सदैव इन गुणों की अधिकतम पूर्णावस्था से सम्पन्न रहता है।

बच्चे, युवान, वृद्ध का गुण विनिमय।
सभी में गुणवृद्धि से बने समाज बलमय।।

इस अवतरण में संघ कार्य का, संघ के शिक्षण का महत्त्व और परिचय दिया गया है। बच्चे विश्वास और

पवित्रता से भरे होते हैं। जबकि तरुण, युवा वर्ग, रजोगुणी अर्थात् इच्छा और क्रिया प्रधान होता है। प्रौढों में अनुभव के कारण धीरज और ज्ञान का भण्डार भरा होता है। बच्चों में ज्ञान और इच्छा का अभाव होता है। तरुणों में धीरज और विश्वास की न्यूनता दिखाई देती है। वैसे ही प्रौढों में इच्छा और पवित्रता की कमी होती है।

संघ शिक्षण प्रौढों के ज्ञान और युवाओं की क्रिया का बच्चों में सिंचन करता है। वैसे ही प्रौढों के धीरज और बच्चों के विश्वास को युवाओं में भरा जा रहा है। प्रौढों में कमी वाली इच्छा और पवित्रता का भाव भरा जाता है। बच्चों की पवित्रता और युवाओं की इच्छा की प्रौढों में पूर्ति करने की कला की संघ प्रवृति में सुन्दर व्यवस्था है। ऐसी व्यवस्था के बारे में मुँह से बोलना या कलम से कागज पर लिखना तो अति सरल है, किन्तु इस प्रक्रिया को कार्य रूप में ढालने, वास्तविक रूप से देने की विधि मानव शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक तरीके से संघ के वरिष्ठ शिक्षक करते हैं। यह कार्य साधारण मनुष्य के समझ में भी नहीं आएगा।

बच्चे, युवा और प्रौढ़ की हर एक की योग्यता की कमी दूसरों की विशेषता द्वारा पूर्ण करने का काम श्री क्षत्रिय युवक संघ अपनी सामुहिक संस्कारमयी कर्मप्रणाली द्वारा सफलता पूर्वक सूक्ष्म रूप से पार उतारता है। इस तरह से संघ में बड़े पैमाने पर स्वयंसेवक-बच्चे, युवा और प्रौढावस्था की तमाम विशेषताओं को जीवन में उतारते हैं।

इस प्रक्रिया को हमारे समाज में किस रूप में सम्मिलित कर सकते हैं? हमारे पास सामाजिक शिक्षण के लिए व्यवस्था तो है नहीं। हाँ, छात्रावास हैं। किन्तु वहाँ तो विद्यार्थियों को सरकार-मान्य शिक्षण लेने के लिए और ठहरने तथा भोजन की सुविधा ही दी जाती है न कि सामाजिक शिक्षण।

बालक, युवा, प्रौढ तीनों घटकों की स्वाभाविक विशेषता प्राप्त करवाने की हमारी सामाजिक संस्थाओं द्वारा व्यवस्था बनाई जावे तो कितने ही सामाजिक प्रश्नों का स्वाभाविक निराकरण हो जाए। समाज व्यसनों से मुक्त बने, समाज-संगठन जो समाज का पीड़ादायक प्रश्न है-उसे बहुत सहजता से हल करके संगठन बनाया जा सके। समाज यदि ऐसी व्यवस्था बनाने की सोचता है तो जब तक वह सुविधा उपलब्ध न हो तब तक हमारे बच्चे, युवा, प्रौढ संघ की इस उपलब्ध प्रवृति का उपयोग करें तो समाज के लिए सोने का सूरज उगेगा।

सामाजिक संस्थाओं के मुखिया, संचालक एक संयुक्त बैठक बुलाकर समाज के उज्ज्वल भविष्य के लिए ऐसा सोचें, करें तो? 'तो' शब्द दूर हो जाए तब समाज का सुवर्ण प्रभात उगेगा।

ऐसे स्वर्णिम प्रभात के लिए हम परमेश्वर से सामुहिक प्रार्थना करें।

अवतरण-95

साधको! तुम्हें कुशल व्यापारी भी बनना है, इसीलिए पहले सुख और दुख का आदान-प्रदान करना सीख जाओ। फिर अपनी विशेषताओं के मूल्य पर मित्रों की कमियों को खरीद डालो। इस सौदे के उपरान्त तुम्हें अनायास ही प्रेम और विश्वास की उपलब्धि होगी। इस प्रेम और विश्वास को बिना मूल्य की आकांक्षा किये जीवन के प्रत्येक कार्य में परस्पर बाँट कर खाना सीख जाओ। जिस दिन अनुभव करो कि तुम इस व्यापार में असफल हो रहे हो, उस दिन समझ लो कि ईश्वर तुम्हीं को निमित्त बनाकर इस साधना रूपी पौधे को नष्ट करना चाहता है। इस समय भी सावधान हो सकते हो, क्योंकि सच्चा साधक वह है जो दैवी विधान को भी चुनौती देने की क्षमता रखता हो।

सद्गुण बाँटकर, दुर्गुण खरीद कर।
समृद्ध बनो प्रेम, विश्वास की पूंजी से।।

इस अवतरण में साधक ने जीवन की सफलता की चाबी बता दी हो, ऐसा लग रहा है। व्यापारी बनकर, विनिमय करके जीवन सफल बनाने का रसायन परोसा है। प्रथम सोपान है सद्गुणी बनकर साथियों के, मित्रों के दुर्गुण खरीद लो अर्थात् साथियों के दुर्गुण हटाकर सहयोगी

परोपकारी कार्य करने की सलाह दी है। अपने सद्‌गुणों के प्रभाव से साथियों के, मित्रों के दुर्गुण दूर करने से तुम्हें उनका प्रेम और विश्वास मिलेगा जिसका आज जगत में अभाव है, ऐसा अमूल्य फायदा होगा। किन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि हम प्रेम और विश्वास जैसे अमूल्य फायदे के बदले नगद पैसे का फायदा पाने में हमारा श्रेय मानते हैं।

आज के जगत में व्यापार करके खूब सारी कमाई करके, फायदा करके उसका भोग स्वयं और स्वयं के परिवार अकेले करते हैं, वहाँ इस अवतरण में साधक कहते हैं इस प्रेम और विश्वास की उपलब्धि के बदले मूल्य की आकांक्षा किए बिना ही जीवन के प्रत्येक कार्य में एक-दूसरे को बाँटना सीख लो। बाँटकर आनन्द प्राप्त करने की बात कुछ लोगों के लिए थोड़ी कठिन है।

हम, अर्थात् समग्र मानव-जात स्वार्थी हैं। इसीलिए अपनी विशेषताओं का उपयोग दूसरों के लिए किए जाने की उदारता के अभाव में हिचकिचाहट अनुभव करते हैं, बात जचती नहीं है। पर मेरी साधना की प्रवृति अर्थात् श्री क्षत्रिय युवक संघ कहता है, मानता है कि तुम्हारे पास धन है और आप निर्धन लोगों की सहायता नहीं करते हो तो यह आपका चारित्र्य दोष है। आपके पास शक्ति है और आप निर्बल, पंगु लोगों की सेवा, रक्षण न करो तो यह चरित्रहीनता है। आपके पास बुद्धि है और आप अज्ञानी, नासमझ लोगों का मार्गदर्शन नहीं करते तो यह भी दोष है। जो अपनी विशेषताओं का उपयोग दूसरों के भले के लिए नहीं करते, उनके चरित्र में यह दोष है।

अगले वाक्य में साधक संघ के स्वयंसेवकों, समाज को खतरे की सूचना देते हुए कहता है-''जिस दिन अनुभव करो कि तुम इस व्यापार में असफल हो रहे हो, उस दिन समझ लो कि ईश्वर तुम्हीं को निमित्त बनाकर इस साधना रूपी पौधे को नष्ट करना चाहता है।'' कोई व्यापारी कुशलता के अभाव में व्यापार में असफल रहता है, वैसे ही यदि संघ के स्वयंसेवक अपने सद्‌गुणों द्वारा साथियों के, मित्रों के दुर्गुण दूर करके प्रेम और विश्वास संपादन में कुशलता नहीं रख पाते तब वे ही साधना समाप्त करने में निमित्त बन जाते हैं। अतः भगवान को दोष देने की बजाए अपनी ही अकुशलता, अयोग्यता प्रवृति को नुकसान पहुँचाती है, ऐसा समझना ज्यादा उचित है।

भगवान की इच्छा तो है कि यह प्रवृति खूब विकसित हो, फले-फूले और जगत में सुख-शान्ति, सुरक्षा और सहयोग की भावना विकसित करके धरती को स्वर्ग बनावे। भगवान की ऐसी इच्छा ही नहीं, वे प्रवृति पर अपना आशीर्वाद भी बरसाते हैं। ''तुम्हीं को निमित्त बनाकर इस साधना रूपी पौधे को नष्ट करना चाहता है।'' यह वाक्य तो साधक को, स्वयंसेवकों को अपनी क्षमता, योग्यता, कुशलता को शक्तिवान बनाने हेतु ललकार है। इसीलिए तो बाद में कहते हैं-''इस समय भी सावधान हो सकते हो, क्योंकि सच्चा साधक वह है जो दैवी विधान को भी चुनौती देने की क्षमता रखता हो।'' इस बात का समर्थन करते पू. तनसिंहजी ने सहगीत में कहा है-**'सच के लिए देवों से भी अड़ना ही पड़ेगा।'**

हम स्वयं भी अपने दुर्गुणों को दूर कर प्रेम और विश्वास की क्षमता, शक्ति, योग्यता प्राप्त करें। इन गुणों का अभाव हो तो स्वयं के लिए इसे समझ सकते हैं, इसलिए परमेश्वर से प्रार्थना करें कि सद्‌गुणों के अभाव में हानिकारक, विनाशक दुर्गुणों पक्षपात, अहंकार से बचाकर हमें सन्मार्ग पर प्रेरित करें।

अर्क- ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव।।

अवतरण-96

परकीया नायिका की भाँति परकीया विचार-प्रणाली भी अपरिपक्व मनुष्य की स्वाभाविक ग्राहक बुद्धि को अपनी ओर अनायास ही आकर्षित कर लेती है। उस विचारधारा से वशीकृत मनुष्य स्वकीया सिद्धान्त-प्रणाली से घृणा करने लग जाता है। अतएव साधक को अपनी निजी विचारधारा के सदैव निकट सम्पर्क में रहकर श्रवण, सम्भाषण और मनन से अपने मानसिक संतुलन को सदैव स्थिर रखना चाहिए। परकीया विचार-पद्धति का उसे सम्मान

अवश्य करना चाहिए पर उसके हाथों में आत्म-समर्पण नहीं।

स्व छोड़कर, पर को करे स्वीकार।
हों वस्तु या विचार, अबुद्ध मन का विकार।।

स्व-पर के भेद की बात गत अवतरणों में कई बार आ गई है। स्वमाता और विमाता, स्वधर्म और परधर्म के बारे में जानने के बाद इस अवतरण में साधक दूसरों की विचार-प्रणाली के बारे में बात करते हैं। जगत में अनेक विचारधाराएँ चलती हैं। कुछ एक विचारधाराओं में गहराई और सार का अभाव होते हुए भी वे बाहर से आकर्षक हो सकती हैं। ऐसी विचारधाराएँ सामान्य, अपरिपक्व मनुष्य को अपनी ओर खींच लेती हैं। आतंकवाद, नक्सलवाद को भी विचारधारा ही माने और उसके बारे में सोचें तो उनमें न गहराई है, न सार ही।

ऐसी ही बात साम्यवादी विचारधारा की है। विशेषकर भारत के साम्यवादियों को लें तो भारत की आदर्श और सिद्धान्तनिष्ठ विचारधारा को छोड़कर वे साम्यवादी विचारधारा के भक्त बने हैं और भारतीय विचारधारा को धिक्कारते हैं। उसे जड़ से नाबूद करने की कसम खाकर उत्पात मचाते हैं। जवारहलाल नेहरू विश्व-विद्यालय में होने वाली घटनाओं से सामान्य मनुष्य के ध्यान में यह बात आई है। साधक ऐसी परायी विचारधारा को परायी-स्त्री के समान मानते हैं।

ऐसी हीन विचारधारा से बचने का उपाय साधक इस अवतरण में दिखाते हैं। लोगों को अपनी श्रेष्ठ, आदर्श, उत्तम विचारधारा के सम्पर्क में रहकर अपनी विचारधारा का मूल्य, महत्त्व बराबर समझना चाहिए। श्रेष्ठ और योग्य उपदेशकों से उस विचारधारा के सिद्धान्त, आदर्श, मूल्य और श्रेष्ठता का श्रवण करना चाहिए। अकेले श्रवण से पार नहीं पड़ती, उसके बारे में चिंतन व चर्चा करके अच्छी तरह समझने और जीवन में उतारने के लिये जागृत रहकर प्रयास करना चाहिए। इससे आगे बढकर साधक कहता है-श्रवण, मनन के बाद अपने मानसिक संतुलन को स्थिर रखना चाहिए। यही सार है।

अब हम अपने समाज की विचारधारा के बारे में हमारे मानसिक संतुलन को स्थिर रखने के बारे में विचार-विमर्श करें तो समाज की वास्तविकता की सच्ची जानकारी मिले। भगवान श्रीकृष्ण ने शौर्य, तेज, धैर्य, चतुराई, युद्ध में अडिगता, दान और ईश्वर भाव आदि सात गुण धारण करने वालों को कहा है क्षत्रिय। हमारी विचारधारा इन गुणों पर आधारित होनी चाहिए। क्षात्रधर्म में, क्षत्रिय के धर्म में मनुष्य ही नहीं जीव मात्र के कल्याण की, उद्धार की उदात्त भावना समाहित है। इस बारे में कल्पना करके कुछ लिखने की बजाए कोई अभ्यासु व्यक्ति परिश्रम करे और एक-एक जिले में पच्चीस लोगों की विचारधारा के बारे में अध्ययन करे तो समाज की विचारधारा का सच्चा स्वरूप समझ में आवे। लेकिन ऐसा करे कौन? शायद किसी को मेरी साधना की तरह 'मैं भी कुछ करूँ' की धुन सवार हो जाए, साहस करे तो परिणाम को पढने, समझने और त्रुटियों-कमियों को दूर कर समाज को जागृत करने की कोई हलचल होगी की नहीं?

छोटे-छोटे अवतरणों द्वारा समाज में चेतना जगाने के लिए बहुत कुछ कहा गया है। किन्तु यह सब कब सम्भव है? साधक कहते हैं-''अतएव साधक को अपनी निजी विचारधारा के सदैव निकट सम्पर्क में रहकर श्रवण, सम्भाषण और मनन से अपने मानसिक सन्तुलन को सदैव स्थिर रखना चाहिए।'' अत्यन्त आवश्यक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सीख साधक दे रहे हैं। 'मानसिक सन्तुलन की स्थिरता' बहुत बड़ी बात है। स्थिरता से बड़ा गुण है। अस्थिरता तो पागलपन है।

पचानवे (95) अवतरणों तक हमको सन्मार्ग पर चलने को खूब प्रार्थना की गई है। इस अवतरण के साथ बाकी के 16 अवतरणों में प्रार्थना की जगह पर 'मैं भी कुछ करूँ' को जीवन मंत्र बनाने का संकल्प लेकर कार्य करने को कहा गया है। इस अवतरण के अन्त में साधक ने यह भी कहा है कि अन्यों की विचारधारा का सम्मान अवश्य करना चाहिए किन्तु समर्पण नहीं।

अर्क- स्व-पर का भेद समझकर स्व को महत्त्व दें।

(क्रमशः)

राजपूत और स्वतंत्रता संग्राम

– कर्नल हिम्मतसिंह पीह

वीरों का सपना जब सच हुआ तब हिन्दुस्तान स्वतंत्र हुआ।
आओ प्रणाम करें उन वीरों को जिनसे देश गणतंत्र हुआ।

राजपूत अपने स्वाभिमान, स्वाधीनता, स्वदेश की प्रभुता एवं अखण्डता को अक्षुण्ण बनाये रखने और देश की अस्मिता की रक्षा करने के लिए सदैव कृत संकल्प रहे हैं। साथ ही भगवद् प्रदत दायित्वों के प्रति अति गम्भीर भी रहे हैं।

देश की सुरक्षा और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना उसका कर्तव्य भी है और स्वभाव भी। दायित्वों का निर्वाह करने में उसने कभी कोताही नहीं बरती और इस हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए सदैव तत्पर रहता है।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से 90 वर्ष पूर्व ही देव प्रखण्ड जिला औरंगाबाद के अन्तर्गत 'पवई' के जागीरदार राजा नारायणसिंह ने स्वतंत्रता संग्राम का शंखनाद कर दिया था। तब से लेकर भारतवर्ष को अंग्रेज मुक्त कराने तक राजपूतों ने अपना स्वतंत्रता संग्राम देश के भिन्न-भिन्न राज्यों में जारी रखा था। इस दौरान असंख्य क्रांतिकारियों ने लड़ाई के मैदान में अंग्रेजों से लोहा लिया, उनको जान-माल की भारी क्षति पहुँचाई, बलिदान दिया, काले पानी की सजा काटी और हंसते-हंसते फांसी के फंदे पर झूल गए।

फिर भी ईर्ष्यालु और कृतघ्न लोग यह कहने में तनिक शर्म भी महसूस नहीं करते कि 'राजपूतों ने अंग्रेज सरकार के सामने समर्पण कर दिया और स्वतंत्रता संग्राम में कोई योगदान नहीं दिया।'

हमारी प्रतिष्ठा को पचा नहीं पाने पर हमारे प्रतिद्वंदियों ने प्रतिस्पर्धा की स्वस्थ परम्परा के अनुरूप हमारे से आगे बढने का प्रयास न कर हमें पीछे धकेलने का घृणास्पद और निकृष्ट कार्य किया है। हमारे विरोधियों की ओछी सोच ने यह पूर्ण रूप से साबित कर दिया है कि- 'बुराई वो ही करते हैं, जो बराबरी नहीं कर सकते।'

हमारे इस विरोध का महत्त्वांकन करने से पूर्व यह जान लेना नितान्त आवश्यक है कि ये विरोधी तत्त्व हैं कौन? क्या इनका विरोध सैद्धान्तिक धरातल पर है? नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये तो आत्म-लघुत्व की हीन भावना से पराभूत हैं, अपनी आत्महीनता की प्रवृति को विरोध और कुतर्क के आवरण के नीचे दबा देने का है इनका प्रयास। ये तो वे ही लोग हैं जिन्होंने धूर्तता और मायावी कृत्यों द्वारा हमें अपने घरों से निष्कासित कर रखा है। और अब ये हमारी पैतृक सम्पत्ति का निश्चित हो उपयोग करने में संलग्न हैं।

स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों और देश प्रेमियों के प्रति हीनभावना रखने वाले और उनकी पवित्र आत्मा को कष्ट पहुँचाने वाले, कृतघ्न, छिछोरे और अनुत्तरदायी व्यक्ति निन्दनीय ही नहीं अक्षम्य हैं। वे किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया के योग्य हैं ही नहीं।

परन्तु कदाचित इस प्रकार का दूषित प्रचार किसी निर्मल हृदय की पवित्र भावना अथवा मान्यता को कहीं प्रभावित नहीं कर दे इसलिए प्रतिक्रिया व्यक्त करना अनिवार्य हो गया है।

ये सर्व ज्ञानी और सच्चे देशभक्त होने का ढिंढोरा पीटने वाले पाखण्डी बेतुके बयानों और आधारहीन तथ्यों को इतिहास की बैसाखी का सहारा देना चाहते हैं। अत: यह जरूरी हो जाता है उस उपलब्ध इतिहास की विश्वसनीयता पर टिप्पणी करना।

इतिहास तो अतीत में घटित घटना का विशुद्ध लिखित प्रमाण होता है, सुरक्षित विवरण होता है, निर्देशित दस्तावेज नहीं। जबकि भारत के मामले में मुगलों और अंग्रेजों के समय का इतिहास पूर्ण रूप से निर्देशित है। आधुनिक ढंग से लिखा हुआ इतिहास, इतिहास की उस शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार, जो भारतीय ऋषियों ने दी थी, इतिहास है ही नहीं। अत: आज आधुनिक रूप से लिखित भारत के इतिहास पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है और वह भी भारतीय साक्ष्यों के आधार

पर, क्योंकि वर्तमान में सुलभ इतिहास निश्चित ही भारत का और उस भारत का जो एक समय विश्वगुरु था, जो सोने की चिड़िया कहलाता था और जिसकी संस्कृति विश्वव्यापी थी, हरगिज नहीं है।

श्लाघ्य: स एव गुणवान राग द्विष बहिस्कृत।
भूतार्थ कथने यस्य स्थंभ।।

अर्थात् एक सच्चे इतिहास लेखक की वाणी को न्यायाधीश के समान राग-द्वेष विनिर्मुक्त होना चाहिए तभी उसकी प्रशंसा हो सकती है।

जब भी विजेता पराधीन जातियों का इतिहास लिखवाता है तो उसमें हारी हुई जातियों को सदा ही सत्वहीन, पौरुषविहीन, विखण्डित और पतितरूप से चित्रित करवाने का प्रयास करता है। क्योंकि ऐसा करवाने में विजेता का स्वार्थ निहित होता है। वह हारी हु जातियों की भाषा, इतिहास और मान बिन्दुओं के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न करवाने के लिए उन्हें गलत ढंग से प्रस्तुत करवाता है। क्योंकि भाषा, साहित्य, इतिहास और संस्कृति विहीन जाति का अपना कोई अस्तित्व ही नहीं होता है। अत: पराधीनता के काल में अंग्रेजों अथवा मुगलों द्वारा लिखाया गया भारत का इतिहास इस प्रवृति से भिन्न नहीं हो सकता है। मुगलों और अंग्रेजों ने भारत के हर कथ्य और तथ्य को अत्यन्त हेय दृष्टि से देखकर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का अवमूल्यन करके उसे कम आंका है।

हर अंग्रेज यहाँ अपने आपको राजा और भारतवासी को एक गुलाम से अधिक कुछ नहीं समझता था। उस समय भारतीयों के बारे में अंग्रेजों के विचार बहुत ही घटिया स्तर के थे। वे भारतीयों को बहुत ही तिरस्कृत, घृणास्पद, उपेक्षित और तुच्छ दृष्टि से देखते थे।

ऐसी मानसिकता वाले लोगों की छत्रछाया में पोषित और प्रेरित विद्वानों द्वारा आधुनिक ढंग से लिखवाया गया राजपूतों का इतिहास जो अपनी आन, बान और शान के लिए, अपनी बहादुरी और स्वाभिमान, गरिमा और गौरव के लिए सदियों से विश्व रंगमंच पर विख्यात रहे हैं, उनको भीरु, कुपात्र, चाटुकार के रूप में प्रकट करना आश्चर्य की बात नहीं लगती।

अंग्रेजी सत्ता द्वारा लार्ड-मैकाले के आदेशानुसार इस देश में सप्रयास पैदा किए गये उनके समर्थकों ने अपने तात्कालिक लाभ के लिए स्वार्थवश हमारे इतिहास को विकृत करने में कोई कौर-कसर नहीं छोड़ी। दुष्प्रचार कर हमारे मनोबल को गिराने में प्रयासरत महानुभावों और सामाजिक सौहार्द में विष घोलने वालों को मैं बिहारी (कवि) की सीख याद दिलाना चाहूंगा ताकि वे संभल जाएँ। जयपुर के राजा जयसिंह शाहजहाँ की ओर से हिन्दू शासकों से युद्ध करते थे, यह बात बिहारी को उचित नहीं लगी तो उसने संकेत से समझाने का प्रयास किया और कहा-

स्वारथु सुकृतु न श्रम वृथा देखि विहंग विचारि।
बाज पराये पानि पर तू पंछिनु न भारी।।

अर्थात्- शिकारी लोग शिकार के लिए बाज रखते हैं। बाज पक्षियों का शिकार कर शिकारी को दे देता है। इसमें नहीं तो बाज नेक काम कर रहा और ना ही अपनी स्वार्थ-सिद्धि, वह तो व्यर्थ में ही परिश्रम कर रहा है।

'शाहजहाँ के अहं की तुष्टि के लिए जयसिंह तुम अपने ही लोगों को मत मारो। जरा विचार करो क्योंकि इसमें न तो तुम्हारे राज की वृद्धि हो रही है और ना ही देश भक्ति का काम कर रहे हो। तुम तो अपना श्रम ही व्यर्थ कर रहे हो।' अत: अंग्रेजों का हित साधने में लगे लोगों जरा सोचो। काम वो करो जो स्वयं के समाज के और राष्ट्र के हित में हो।

अब तनिक विवेचना आत्म समर्पण की कर लें। आत्म समर्पण तो हीनभावना से ग्रस्त वह नीच और भीरु इन्सान करेगा जिसको भौतिक सुविधाओं की ललक और जिन्दगी से मोह हो। राजपूत को तो जिन्दगी से मोह कभी रहा ही नहीं। इतिहास इसका साक्षी है। वह तो-

मरण को मंगलमय अवसर गिन विधि को हाथ दिखाने,
कर केशरिया पिये कसूंबा जाते धूम मचाने,
मौत को पाठ पढाने।

जिस स्वाभिमानी का यह दर्शन हो, वह क्या कभी आत्म समर्पण करेगा? इतिहास तो इसकी गवाह नहीं देता।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राजपूत स्वतंत्रता सेनानियों और अंग्रेजों के बीच हुई मुठभेड़ों की प्रस्तुति हमारे

विरोधियों का भ्रम मिटाने, उनके पैरों तले की जमीन खिसकाने और उनको निरुत्तर करने के लिए पर्याप्त होगी। अंग्रेजों के खेमे में 'विद्रोही जागीरदार' के नाम से विख्यात थे राजा नारायणसिंह 'पवई'। जिन्ना-औरंगाबाद और अंग्रेजी सेना के बीच 1764 से 1792 तक लड़े गये युद्ध क्या कोई युद्धाभ्यास था अथवा स्वतंत्रता संग्राम का शंखनाद जिसने अंग्रेजी राज की चूल हिला दी।

नरसिंहगढ रियासत के युवराज चैनसिंह का मात्र 23 वर्ष की आयु में सन् 1857 की क्रांति से 33 वर्ष पूर्व ही भारत की स्वाधीनता के लिए सशस्त्र क्रांति में कूद पड़ना क्या आत्म समर्पण था?

14 अगस्त, 1846 को रामसिंह पठानिया द्वारा मामून कैण्ट को लूटकर शाहपुर कण्डी के दुर्ग पर धावा बोलना और अंग्रेजी सैनिक टुकड़ी को वहाँ से खदेड़ भगाना क्या था?

तुलसीपुर के राजा दृगनारायण को पहले कैद कर बेली गारद में नजरबंद रखना और फिर उनको गोली मार देना क्या था? समर्पण नहीं करने की सजा।

24 जुलाई, 1857 को कैप्टन एचिसन के नेतृत्व में एक विशाल सेना को भोपावर पर आक्रमण कर इस पर पुन: कब्जा कर लेना और बाद में महाराजा बख्तावरसिंह अमझेरा के भय से अंग्रेजों का भाग खड़ा होना क्या साबित करता है?

12 अगस्त, 1857 को गोरखपुर के अलीनगर चौराहे पर बंधुसिंह को बार-बार फांसी के फंदे पर लटकाना, क्या ये सब आत्म समर्पण की घटनाएँ थी?

वीर कुंवरसिंह के आरा और जगदीशपुर के सामरिक अभियान क्या अंग्रेजों के सामने घुटने टेकने के लिए चलाये गए थे? ब्रिटिश इतिहासकार होम्स का कुंवरसिंह के लिए लिखना-

'उस बूढे राजपूत ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अद्‌भुत वीरता और आनबान के साथ लड़ाई लड़ी। यह गनीमत थी कि युद्ध के समय कुंवरसिंह की उम्र 80 वर्ष के करीब थी। अगर वह जवान होता तो शायद अंग्रेजों को 1857 में ही भारत छोड़ना पड़ता।'

उपरोक्त घटनाएँ क्या आत्म समर्पण के पूर्वाभ्यास के दौरान या उसके उपसंहार के रूप में घटित हुई?

1857 में ही आऊवा के ठाकुर कुशालसिंह के नेतृत्व में करीब 5000 राजपूतों ने अपनी रियासत जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह का बहिष्कार कर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाइयाँ लड़ी और अपनी राष्ट्र भक्ति की अनुपम मिसाल प्रस्तुत की थी। वर्षों तक लड़े गये इस अभियान में अंग्रेज सेना के सेना नायक कैप्टन मेक मैसन का सिर काटकर आऊवा गढ के प्रवेश द्वार पर टांग दिया था।

28 अप्रेल, 1858 को जोधासिंह अटैया और उसकेह्न51 साथियों को बावनी इमली पर फांसी की सजा क्या उनके आत्मसमर्पण के प्रतिकार के रूप में दी गई थी?

ठाकुर गुलाबसिंह तोमर के नेतृत्व में साठा चौरासी की क्रांति और धौलाना के राणा झनकूसिंह की अगवाई में लाल किले से 'युनियन जैक' का हटाना और उसके स्थान पर केशरिया ध्वज फहराना क्या आत्म समर्पण था?

23 दिसम्बर, 1918 को वायसराय लार्ड हार्डिंग जब गजारूढ होकर दिल्ली के चाँदनी चौक बाजार से गुजर रहा था तब उनको निशाना बनाकर बम फेंकने वाला और प्रतिशोध की ज्वाला से जलने वाला राजपूत क्या कभी आत्म समर्पण की सोच सकता है?

सम्राट एडवर्ड के राज्यारोहण के उपलक्ष्य में भारत के वायसराय लार्ड कर्जन ने जनवरी 1903 में दिल्ली में एक भव्य समारोह का आयोजन किया था। इसमें भारतवर्ष के समस्त महाराजाओं, राजाओं, नवाबों को आमंत्रित किया गया। इस अवसर पर मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह ने उक्त दरबार का यह कहकर बहिष्कार कर दिया कि उनके स्वाभिमानी पूर्वजों ने दिल्ली दरबार में कभी नतमस्तष्क होकर उपस्थित नहीं होने की प्रतिज्ञा की थी जिसका तब से अक्षरश: पालन किया जा रहा है और वे स्वयं इस प्रतिज्ञा का पालन करेंगे। ऐसा स्वाभिमानी राजपूत क्या कभी आत्म समर्पण करेगा?

हाँ यह हकीकत है कि राजस्थान के राजाओं ने अंग्रेजों के विरुद्ध कोई बड़ी लड़ाई नहीं लड़ी। परन्तु यहाँ इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि सन्

1768 से लेकर 1800 तक जयपुर और जोधपुर की सेनाएँ इस्माइल बेग की मदद से कामा, पाटन, मेड़ता, लालसोट और मालपुरा की लड़ाइयों में भरतपुर के जाटों और ग्वालियर के सिंधिया की सेनाओं के साथ लोहा ले रही थी। 1858 में साम्राज्ञी विक्टोरिया की ओर से की गई घोषणा द्वारा देशी रियासतों को यह आश्वासन दिया गया कि उनका अस्तित्व बना रहेगा, यह भी एक कारक रहा हो। साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उस समय भारत भूमि 565 भागों में विभाजित थी। राष्ट्र के रूप में कुछ भी विद्यमान नहीं था। मुगलों और मराठों के अमानवीय व्यवहार ने कहीं इस सोच को कदाचित जन्म दिया हो कि 'दुश्मन का दुश्मन हमारा मित्र'।

सीमित संसाधनों के कारण गुरिल्ला युद्ध प्रणाली अपना कर अंग्रेजों को अनेकानेक स्थानों पर उलझा कर उनको क्षति पहुँचाना उनके प्रति नफरत ही तो दर्शाता है। यह प्रणाली सफलता पूर्वक अपनाई भी गई जिसके सुखद परिणाम भी मिले।

आजाद हिन्द फौज में राजपूतों के योगदान को अहम् माना गया है।

जगह-जगह से सैनिक छावनियों से मुक्त होकर आ रहे सैनिकों का नेतृत्व स्थानीय रियासतों के रियासतदारों ने किया और अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया। बगावत कर आ रहे सैनिकों में राजपूतों का बाहुल्य था। इस प्रकार का संग्राम करने वाले चुनिंदा सेनापतियों की उपलब्धि का संक्षिप्त विवरण अलग से आगे दिया जा रहा है।

राजपूतों ने सदियों से सीमित संसाधनों के साथ अनेक आततायियों के खिलाफ संघर्ष किया है। परन्तु उसने न तो सिद्धान्तों के साथ समझौता किया है और न ही किसी को उस पर हावी होने दिया है। स्वराज उसका संकल्प भी है और जन्मसिद्ध अधिकार भी।

स्वतंत्रता प्राप्ति और देश का विभाजन :

भारत को स्वतंत्रता देश के विभाजन के साथ प्राप्त हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही स्वतंत्र भारत को व्यापक नर संसार व साम्प्रदायिक दंगों को झेलना पड़ा था। लाखों लोग अपनी सम्पत्ति एवं जीवन से हाथ धो बैठे। बेघर हो गए और परिवार से बिछुड़ गए। देश के समक्ष यह कठिन परिस्थितियों का दौर था।

साम्प्रदायिक दंगों से आतंकित अनेक राज्यों की जनता में सुरक्षा का विश्वास पैदा करना और साम्प्रदायिक सौहार्द का वातावरण पैदा करने की एक गम्भीर समस्या थी। परन्तु राजपूत शासित गाँवों और कस्बों में वहाँ की जनता पूर्ण रूप से सुरक्षित थी और शान्ति से अपना जीवन यापन करती रही थी। उनको किसी प्रकार से असुरक्षित महसूस नहीं होना पड़ा जबकि मुगल शासित रियासतों और कस्बों में हिंसा को प्रोत्साहन मिला और साम्प्रदायिक दंगों में नरसंहार हुआ तथा जान-माल की भारी क्षति हुई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त देशी रियासतों के विलीनीकरण की विकट समस्या थी। 1947 में हमारा देश 562 स्वतंत्र रियासतों में बंटा हुआ था। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के अन्तर्गत इन रियासतों को यह विकल्प दिया कि वे भारत या पाकिस्तान अधिराज्य (डॉमि नियम) में शामिल हो सकती हैं अथवा एक स्वतंत्र संप्रभु राज्य के रूप में स्वयं को स्थापित कर सकती हैं। सभी राजपूत रियासतों के शासकों ने स्वदेश एवं स्वराज्य की भावना और सुराज की अपेक्षा से प्रभावित होकर भारत गणराज्य में शामिल होने का निर्णय लेकर अपने त्याग और राष्ट्रभक्ति की अनुपम मिसाल प्रस्तुत की।

तभी हैदराबाद जो एक हिन्दू बहुसंख्यक रियासत थी, के शासक निजाम मीर उस्मान अली ने भारत में शामिल होने से इन्कार कर दिया। यही नहीं सशस्त्र कट्टर पंथियों ने हैदराबाद की हिन्दू प्रजा के खिलाफ हिंसक वारदातों को अंजाम देना प्रारम्भ कर दिया। 13 दिसम्बर, 1948 को 'ऑपरेशन पोलो' के तहत भारतीय सैनिकों ने 4 दिन तक चले सशस्त्र संघर्ष के द्वारा निजाम को आत्म समर्पण करने के लिये मजबूर कर दिया तब जाकर उसने विलय-पत्र पर हस्ताक्षर किए।

जूनागढ का एक और मुगल शासक पाक में विलय के पक्ष में था। परन्तु वहाँ जनमत करवाकर जूनागढ का विलय भारत में किया गया। जूनागढ का नवाब मोहम्मद महाबत खानजी पाकिस्तान भाग गया। वहाँ अब उनके परिवार का ना

तो मान सम्मान शेष रह गया और ना ही सम्पत्ति। गरीब गुजरान कर वह परिवार **'नवाबों की संताने अब तांगें इक्के चला रही'** कहावत को चरितार्थ कर रहा है।

भोपाल का नवाब हमिदुल्ला खान जो भारत की स्वतंत्रता के ही खिलाफ था उसने मार्च 1948 में अपनी रियासत को स्वतंत्र रियासत का दर्जा होने की मांग पर अड़ियल रुख अपना लिया। परन्तु लौह पुरुष सरदार पटेल के दृढ निश्चय के सामने नवाब को मजबूर होकर 30 अप्रेल, 1948 को विलय पत्र पर दसख्त करने पड़े।

1947 में विभाजन के तुरन्त बाद पाकिस्तान से विस्थापित हुए शरणार्थियां के पुनर्वास की गम्भीर समस्या पैदा हो गई थी। सभी रियासतों के पूर्व शासकों ने निजी स्तर पर इस समस्या से निपटने के लिये सराहनीय काम किए और स्थानीय लोगों की सुरक्षा के पुख्ता इंतजाम कर अपनी जनता के प्रति अपने सामाजिक दायित्वों को पूर्ण रूप से निभाया। सिंध से आने वाले हिन्दु सिंधी शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए महात्मा गाँधी के अतुरोध पर कच्छ के महाराजा महामहिम श्री विजयराजजी खेंगारजी जाड़ेचा ने गांधी धाम में 61 वर्ग कि.मी. भूमि दान में देकर अपनी दान-वीरता का परिचय दिया।

स्वतंत्र संग्राम और उसके उपरान्त अधिकतर देशी रियासतों के मुगल शासकों का रुख राष्ट्र के प्रति नकारात्मक और योगदान शून्य रहने पर भी उन पर कोई अंगुली तक नहीं उठाता है और राजपूतों के बलिदान और योगदान को नजरअंदाज करना ही नहीं, उनकी निन्दा करने की हिमाकत करते हैं।

भारत जैसे सम्पन्न राष्ट्र को स्वतंत्र घोषित करना बरतानिया जैसी स्वार्थी सरकार के लिए, जो हर निर्णय को हानि और लाभ के तराजू से तोलती हो, सरल नहीं था। परन्तु भारत को स्वतंत्रता प्रदान करना उनकी मजबूरी हो गई। इस मजबूरी की हालात पैदा करने वाले अनेक कारक थे। जिनमें मुख्य रूप से बाध्य करने वाले कारण थे-सैनिक विद्रोह, सशस्त्र, क्रांति, बंगभंग, गदर आन्दोलन, सुभाष बोस की इण्डियन नेशनल आर्मी, जलियांवाला बाग का नरसंहार, महात्मा गाँधी का अहिंसात्मक एवं असहयोग आन्दोलन और नौसैनिक विद्रोह।

हमारे राष्ट्र के निर्माता और कर्णधार हमें गा-गाकर बताते आये हैं कि 'दे दी हमें आजादी बिना खड़ग बिना ढाल, साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल' और यही हमारे पाठ्यक्रम में भावी पीढी को पढाया जा रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति का सारा श्रेय हम महात्मा गाँधी और पंडित नेहरू के अहिंसात्मक आन्दोलन को देते आए हैं। परन्तु उस समय के बरतानिया के प्रधानमंत्री क्लीमेण्ट एटली को पूछे जाने पर उन्होंने साफ शब्दों में जोर देकर कहा कि भारत को स्वतंत्रता प्रदान के निर्णय को गांधी के सत्याग्रह ने बहुत कम, आटे में नमक जितना ही प्रभावित किया। सैनिक विद्रोह, सशस्त्र क्रांति, सुभाष की INA की गतिविधियों और नौसैनिक विद्रोह ने स्वतंत्रता प्रदान करने और जान बचाकर भारत से भागने के लिए हमें बाध्य किया।

इन बाध्य करने वाली सभी गतिविधियों में राजपूतों ने अहम् भूमिका निभाई है। परन्तु उनके द्वारा दिए गये योगदान और बलिदान को वह प्रचार, प्रसार व सम्मान नहीं मिला जो मिलना चाहिए। इसके तीन कारण रहे-

राजपूत का सशस्त्र विद्रोह अंग्रेज सरकार के विरुद्ध था अत: सरकार का प्रयास उसे सदैव कुचलने और उसे जमींदोज करने में रहा। वह इसके खिलाफ लड़े जा रहे जंग का बखान कर इन प्रयासों को बढावा देने का जोखिम नहीं उठाना चाहती थी।

देश के नेता स्वतंत्रता संग्राम की सफलता का संपूर्ण श्रेय स्वयं लेने में लगे रहे। श्रेय पर एकाधिकार की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अन्य प्रयासों को सार्वजनिक नहीं होने दिया।

संसाधनों की कमी के कारण राजपूतों ने स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित गतिविधियों को अपने प्रभावक्षेत्र तक ही सीमित रखा तथा असंगठित रूप में अंजाम दिया इसलिए उनके योगदानों को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान नहीं मिल सकी। हालांकि उनके विरोध का संग्रहित असर अंग्रेज सरकार को विचलित करने में सफल रहा।

(लेखक की प्रकाशाधीन पुस्तक 'आक्षेप-भंजन' का अंश)

सत्य ही ईश्वर है

– ब्रिगेडियर मोहनलाल (से.नि.)

सनातन धर्म विश्व का सबसे पुराना धर्म है, जिसे ही बाद में हिन्दू धर्म कहा गया। सनातन, यानी अनन्त या नित्य, धर्म जो श्रुति के माध्यम से ईश्वर से प्राप्त हुआ है। वही ईश्वर जो अपने वसुधैव कुटुम्ब को सनातन धर्म के सिद्धान्तों पर चला रहा है। सनातन धर्म में पारस्परिक त्याग और सेवा की भावना सभी जीवात्माओं को सदा जोड़े रखती है। उदाहरण के तौर पर मानव के दैनिक समर्पण, ह्नऋण और कर्तव्य हमें पशु-पक्षियों व प्रकृति से जोड़े रखते हैं। अपने ऋण तथा कर्तव्यों का पालन करते हुए परस्पर जुड़े रहना ही मानव के नैतिक गुण हैं। एक गुणी मानव अपने कर्तव्य/दायित्व को पूरा करते हुए सभी जीवात्माओं से प्रेम करता है, अत: सदा उनसे जुड़ा रहता है। जबकि दुराचारी मानव अपने कर्तव्य/दायित्व को पूर्ण करने से कतराता है। अत: अन्य जीवों से घृणा करते हुए अपने आपको उनसे दूर कर लेता है।

महाभारत के अनुशासन पर्व में ऐसे नैतिक गुणों का उल्लेख है जो जीवात्माओं को परस्पर जोड़े रखते हैं। ये नैतिक गुण हैं : सत्य, करुणा (दया), क्षमा, परोपकार, निष्पक्षता, विनम्रता, सहनशीलता, त्याग (सेवा), संयम, ईर्ष्याहीनता, अहिंसा इत्यादि। इन मानवीय गुणों से हम पूर्णतया अवगत हैं परन्तु इनको जीवन में उतारने में काफी विषमता है। भीष्म पितामह के अनुसार ये नैतिक गुण प्रत्यक्ष रूप से सत्य के स्वरूप हैं और सत्य ही यथार्थ है। अत: सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही ईश्वरीय प्रकृति है। इसी तरह गुरु ग्रंथ साहिब भी 'सत नाम कर्ता पुरुष' (यानी सत्य ही ईश्वर है) पर आधारित है। प्रकृति के सभी नियम सत्य के ही द्योतक हैं और बिना किसी परिवर्तन के मानवता की सेवा में कार्यशील हैं। अत: नीतिशास्त्र का सबसे बड़ा सत्य यही है कि हमें दूसरों के प्रति ऐसी भावना रखनी चाहिए जो हम अपने लिये चाहते हैं। ऐसे भलाई के विचार सत्य के साथ रखने चाहिए। यदि हम दूसरों के प्रति भलाई के विचारों का झूठा प्रदर्शन करते हैं तो हम दूसरों की जीवात्मा से दूर हो जाते हैं जबकि सच्चाई जीवात्माओं को आपस में जोड़ती है और झूठ जीवात्माओं को अलग करती है। हम सब एक ही ईश्वरीय आत्मा हैं अत: सभी मिलकर वसुधैव कुटुम्ब की तरह रहना ही सत्य है।

सत्य हिन्दू धर्म में हमेशा दैविक चरित्र रहा है। किसी भी महान चरित्र के मुँह से असत्य वचन नहीं निकला। महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण ने शस्त्र नहीं उठाने का प्रण किया था और भीष्म पितामह ने यह मन में ठान लिया था कि श्रीकृष्ण को शस्त्र उठाने के लिये विवश कर देंगे। प्रचंड युद्ध में ऐसी विचित्र स्थिति आ गई कि अर्जुन की सहायता के लिये श्रीकृष्ण तीसरे ही दिन सुदर्शन चक्र लेकर और नौवें दिन फिर कौड़ा लेकर भीष्म पितामह की ओर दौड़े। परन्तु श्रीकृष्ण के प्रण की सच्चाई रखने के लिये अर्जुन ने दोनों बार श्रीकृष्ण के चरण पकड़कर उनसे ऐसी मदद के लिए क्षमा माँगी।

इसी युद्ध के दौरान अश्वत्थामा हाथी के मारे जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर हतोत्साह में सच्चाई को भूल गये और द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के मारे जाने की झूठी खबर बता दी। जिसके कारण उनके रथ की दैविक शक्ति समाप्त हो गई और रथ जमीन में धंस गया। इसी तरह जब पांडव तेरह वर्ष के वनवास में थे तब श्रीकृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर को कौरवों के खिलाफ सेना भेजने के लिए सुझाव दिया, तब धर्मराज युधिष्ठिर ने साफ मना कर दिया कि पांडव के पुत्र सच्चाई के रास्ते से कभी नहीं भटकेंगे। इस तरह सच्चाई सदा दैविक चरित्र रहा है।

देवों और राक्षसों की लड़ाई के समय, देवों ने सूर्यवंशी राजा दशरथ की मदद माँगी। क्षत्रिय की तरह लड़ाई करते हुए राजा दशरथ मूर्च्छित हो गये। उनकी छोटी रानी कैकेयी ने उनके रथ को सुरक्षित स्थान पर ले जाकर उनकी जान बचाई। जिसके लिए राजा दशरथ ने दो वरदान दिये, जिन्हें कैकेयी ने भविष्य के लिए सुरक्षित

(शेष पृष्ठ 19 पर)

पृथ्वीराज चौहान – इतिहास की धुंध पर एक प्रकाश – भूमिका

– विरेन्द्रसिंह राठौड़ मांडण (किनसरिया)

हम आज जो हैं जैसे हैं वो हमारे अतीत का फल है और वही जीवन की भावी उपलब्धियों का रसायन भी बन जाता है। बीते समय के न जाने कितने पहियों की छाँव हम पर पड़ती है, 1000 वर्ष पहले किसी पूर्वज के एक निर्णय से लेकर कल के दिन हमने क्या किया था उस तक।

अतीत की इतना कुछ परिभाषित करने की शक्ति ही समाज को बारम्बार इतिहास की ओर खींच लेती है। पर स्वयं अतीत की परिभाषा क्या है? इतिहास का मंडप सदा केवल तथ्यों की शिला पर खड़ा नहीं किया जाता। उस पर नियंत्रण होता है इतिहास के अलग-अलग ठेकेदारों का। सो इतिहास का कथन कौन कर रहा है और क्यों, ये बड़े महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन जाते हैं। उदाहरण के लिए फिल्म जगत को लें, जिसे पिछले कुछ समय से ऐतिहासिक परिदृश्य में विचरण करने में विशेष लगाव जागा है।

इस प्रवृत्ति के गर्भ में सामाजिक उथल-पुथल और सोशल मीडिया से होती सूचना की अविरल बाढ़ दिखाई देती है। पर फिल्मों का ये मंथन चौंकाने वाला नहीं है। हर रचनात्मक क्षेत्र सदा ही समाज का प्रतिबिम्ब रहा है। और हमारा समाज तो अब भी अपनी चेतना पर छाई औपनिवेशिक निद्रा से पूरी तरह नहीं जागा, न ही अपने इतिहास का ठीक साक्षात्कार कर सका है। सो स्वाभाविक था कि फिल्में इस परिवर्तन और अंतर्द्वंद को उठाकर उन पर समाज के बौद्धिक विप्लव और उसकी शिक्षा दशा को दर्शायें। जब तक इतिहास पर हमारा कथानक स्थिर नहीं हो जाता तब तक फिल्मजगत में उसके विवादास्पद चित्रण के प्रति रुचि समाप्त नहीं होगी। और तब तक मिथकों व तथाकथित इतिहास की खिचड़ी बनती रहेगी। सम्भव है इसका नवीनतम रूप आपको इन दिनों पृथ्वीराज चौहान पर बनने वाली एक फिल्म में दिख जाये।

फिल्मों, टीवी धारावाहिकों व सोशल मीडिया पर जो भी सामग्री परोसी जाये, उसमें सदैव कोई सूक्ष्म, छद्म प्रयोजन निहित होता ही है। इन परिस्थितियों में बना मुख्यधारा का लोकप्रिय कथानक ऐतिहासिक तथ्यों पर हमारी व भावी पीढ़ियों की दृष्टि को प्रदूषित करता है। परिणाम यह कि इंटरनेट व उसके बाहर भी सार्वजनिक रूप से इतिहास पर पूर्वाग्रह से निचोड़े ऐसे वाद-विवाद होते हैं जिनसे सत्य का कोई सरोकार नहीं पाया जाता।

ये कोई अटपटी बात नहीं कि हमारा इतिहास हमारे आज की तरह थोड़ा जटिल है। पर इतिहास के जटिल प्रश्नों पर सरल, त्वरित उत्तर ढूंढने की इच्छा में हमने सभी बड़े ऐतिहासिक व्यक्तित्वों को नायक या खलनायक के पालों में बाँट दिया है। दुर्भाग्य से आर्यावर्त के एक महान शासक पृथ्वीराज चौहान आज ऐसे ही ज्वलंत घर्षण का प्रतीक बनकर खड़े हैं।

यूँ तो पृथ्वीराज या इतिहास के कई और नामों पर भारत के हर गली कूचे में बातों के संग्राम मचते हैं। पर इतिहास के अध्ययन की बात आए तो चहुँ ओर व्यापक शैक्षणिक आलस्य मिलता है। समय और उसके साथ इस विषमता का लाभ उठाते नित नए प्रपंच, दोनों का प्रभाव सत्य पर आवरण डालने जैसा होता है।

इतिहास हम सबने शिक्षा लेते हुए पढा है, पर 'जैसे तैसे पार पाने' के लिए। हम में से कितनों ने उसे मथा और उसके निहितार्थ संदेश को ग्रहण किया? इस दयनीय स्थिति के कारण कुछ तो शिक्षा व्यवस्था की इतिहास पर सतही और आत्मघातक नीति में है।

हमारे बहुत पुरातन-विरोधी मित्र जब इतिहास को मिटा नहीं पाते तो खीझ में तंज कसते हैं- ''इतिहास की आँतें उघाड़ कर किसी का क्या भला हुआ है।''

इसका उत्तर तो पाठक पर ही निर्भर करता है। इतिहास तो सदा कुछ सिखाने को तत्पर है। क्या सीखने वाले कुछ

सीख पाते हैं, यदि हाँ तो कितना और उसका प्रयोग कैसा करते हैं ये पूरी तरह उन्हीं के रुझान व क्षमता पर है।

उदाहरण के लिए छोटे व मंझले उद्यमियों को लें, जिनमें कई राजनैतिक-सामरिक इतिहास में विशेष रुचि लेते हैं। इतिहास के पन्नों से दबी रणनीतियों का उपयोग व्यवसाय में गलाकाट प्रतिस्पर्धा से निपटने में किया जाता है। यहाँ तक कि किस युद्ध में कब कैसी व्यूह रचना या दांव-पेच से पासा कैसे पलटा इसका भी गहन अध्ययन व समावेश होता है।

मैंने सूचना प्रौद्योगिकी यानी आईटी के जिस विभाग में काम किया है उसे डाटा वेयरहाउसिंग कहते हैं। यहाँ आप व्यवसाय का वर्षों या दशकों पीछे तक का डाटा प्रोसेस करते हैं। ये एक विशेष और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से किया जाता है। कम्पनी के निदेशक भविष्य के निर्णय लेने के लिए उस प्रोसेस्ड डाटा का उपयोग करते हैं। और ये लगभग हर बड़े व्यवसाय में होता है। यानी पीछे क्या हुआ इस बहुमूल्य जानकारी से कम्पनी का शीर्ष नेतृत्व आगे की दिशा दशा तय करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो, भविष्य के निर्माण में अतीत की बहुत बड़ी भूमिका निकल कर आती है। यदि पाठक खुले मन से निरीक्षण करें तो ऐसे कई उदाहरण हमारे जीवन में दिख जाएँगे।

व्यक्तिगत स्वार्थ से परे एक सोचते चेतनाशील राष्ट्र के रूप में भी, कम से कम भारतीयों के लिए तो इतिहास में गोते लगाना अनिवार्य है। जिससे उसकी वीभत्सता हम पर दोहराई ना जाये और उसमें सिमटा गौरव हम पुनर्जीवित कर सकें।

क्या आपने कभी दूसरों के अनुभवों से सीखने का प्रयत्न किया है, कि उन्होंने जो सबसे सही किया उसे आत्मसात किया जाये और उनसे जो गलतियाँ हुई उन्हें दोहराने से बचें। ऐसा करना इतिहास से सीखना ही है।

क्या हम किसी अनुवांशिक रोग की उपेक्षा इसलिए कर देंगे कि उपचार में पीड़ा होगी, आपको लगन से लगना होगा और जो अनुपयोगी या हानिकारक है हर उस वस्तु को जीवन से निकालना पड़ेगा चाहे जितनी लत लगी हो? ऐसी उपेक्षा से रोग न केवल आपकी भावी पीढ़ियों में जाएगा अपितु ब्याज सहित विध्वंस करेगा।

अपने सामूहिक इतिहास की उपेक्षा किसी भी समुदाय को आज नहीं तो कल ऐसी ही परिणति देगी।

सो आवश्यकता है कि नए सिरे से पृथ्वीराज चौहान पर भी अन्वेषण हो, जो सत्य के बीज को मिथकों व कल्पना की खाल से निकाल लाये। इसी प्रयोजन ने लेखनी पर आने को उद्वेलित किया।

इतिहास के इस यज्ञ में हमारा प्रयास होगा कि कालक्रम के अनुसार पृथ्वीराज के जीवन की घटनाओं का सर्वेक्षण करते हुए चलें। किसी भी घटना या उससे जुड़े विवाद का विभिन्न ऐतिहासिक स्रोत क्या कहते हैं उसका आँकलन करें कि सत्य कहाँ ठहरता है। सभी आयामों का परीक्षण करते हुए ये भी देखेंगे कि ८५० वर्षों पीछे के पृथ्वीराज कालीन इतिहास से आज का हमारा समाज क्या उपयोगी बातें सीख सकता है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ 17 का शेष

सत्य ही ईश्वर है

रखे। बहुत समय बाद जब राजा दशरथ राम का राज्याभिषेक करने जा रहे थे, तब कैकेयी ने वही दो वरदान माँगकर राम को चौदह वर्ष का वनवास देने और अपने पुत्र भरत का राज्याभिषेक करने के वरदान माँग लिये। राजा दशरथ के लिये ये दोनों वरदान पूर्ण करना अपनी मौत थी परन्तु उन्होंने वे दोनों वरदान प्रदान किये। क्योंकि अपने वादे को तोड़ना और सत्य की हत्या करने से तो उन्होंने मरना अच्छा समझा।

सत्य सर्वगुण सम्पन्न है। 'ऋतं सत्यं परं ब्रह्मं' अर्थात् सत्य परब्रह्म है। अतः जो ब्रह्म बनना चाहते हैं उन्हें सत्य का साथ देना होगा।

चत्वार एकतो वेदाः साङ्ग गोपाङ्गाः सविस्तरा।
स्वधीता मनुजव्याघ्र सत्यमेकं किलैकतः।।

चारों वेदों, उनके अंगों और उपअंगों का ज्ञान एक तरफ तोलें और दूसरी तरफ सत्य अकेला ही तोलें, तब भी सत्य सदा भारी पड़ेगा।

ऊँ सत्यं वद, धर्मं चर, सत्यमेव जयते नानृतम् ऊँ।

*

जीवन का उद्देश्य और संघ

– कृपाकांक्षी

उद्देश्य को लेकर अनेक प्रकार की चर्चाएँ होती हैं। अनेक परिभाषाएँ दी जाती हैं लेकिन निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि क्रिया का आदर्श फल उद्देश्य है। यात्रा का गंतव्य उद्देश्य है। ऐसे में जीवन का उद्देश्य क्या हो? उसका आदर्श फल क्या है? जीवन की यात्रा किस गंतव्य पर पहुँच कर नि:शेष होती है? इसको लेकर हम प्राय: स्पष्ट नहीं हो पाते। जीवन के उद्देश्य को समझने से पहले हमें जीवन को समझना चाहिए। जीवन क्या किसी शरीर के जन्म से मृत्यु तक ही सीमित है? जीवन शब्द जीव से बना है और किसी का शरीरांत होने पर हम कहते हैं कि इसका जीव निकल गया अर्थात् शरीर के मरने के बाद भी जीव तो शेष रह गया, जो शरीर से निकल गया। इससे स्पष्ट होता है कि शरीर का अन्त होना जीवन का अन्त नहीं है। तब नया प्रश्न खड़ा होता है कि जीव क्या है जिससे जीवन बना है?

हमारे शास्त्रों में दो तरह के शरीरों की बात की जाती है, एक स्थूल शरीर और एक सूक्ष्म शरीर और यह भी बताया जाता है कि परमात्मा का अंश आत्मा जब इन शरीरों से संयुक्त हो जाता है तब जीव बनता है, इसे ही जीवात्मा भी कहा जाता है। इसे ही चिज्जड़ (चैतन्य + जड़) ग्रंथि भी कहा जाता है। स्थूल शरीर तो हमारे देखने में आता है लेकिन सूक्ष्म शरीर में इंद्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार शामिल हैं। इंद्रियों का स्थूल रूप तो हमें दिखाई देता है लेकिन इनके विषयों का अहसास ही कर पाते हैं, देख नहीं पाते। स्थूल शरीर से जीव का पृथक हो जाना ही प्रचलित अर्थों में मृत्यु कहलाता है। लेकिन जीव की वास्तविक मृत्यु तो उसका स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों शरीरों से पृथक हो जाना है, आत्मा के अपने उद्‌गम परमात्मा में समाहित हो जाना है, आत्मा और परमात्मा का एक हो जाना है, विलगाव समाप्त हो जाना है, ऐसा महापुरुष एवं शास्त्र कहते हैं। ऐसे में यही उसकी यात्रा का अन्त कहा गया है। तब तो प्रचलित अर्थों में जिसे मृत्यु कहा जाता है वह तो जीवन की यात्रा का अन्त नहीं है क्योंकि जीवन तो फिर भी शेष रहता है। सूक्ष्म शरीर के साथ आत्मा का बंधन तो बना ही रहता है। इस प्रकार संपूर्ण रूप से जीवन का उद्देश्य तो वही माना जाएगा जिसमें जीवन शेष ही नहीं रहे, उसका आदर्श फल प्रकट हो जाए, इसकी यात्रा का अन्त हो जाए और वह है उस चिज्जड़ ग्रंथि का समाप्त हो जाना। इसे ही शास्त्रीय भाषा में मोक्ष नाम से संबोधित किया जाता है और यही जीवन का अन्तिम उद्देश्य माना जाना चाहिए।

लेकिन इस उद्देश्य को हासिल करने या उस ओर बढ़ने से पहले यह समझ और स्वीकृति पैदा होनी आवश्यक है कि जीवन क्या है, उसकी यात्रा क्या है, उस यात्रा का गंतव्य क्या है, उसका आदर्श फल क्या है और उपलब्ध देश, काल और परिस्थिति में उसका मार्ग क्या है? श्री क्षत्रिय युवक संघ की पूरी प्रक्रिया यही समझ और स्वीकृति पैदा करती है। संघ अपने शिक्षण द्वारा हमारे में यह समझ और स्वीकृति पैदा करता है कि हमारी इस चिज्जड़ ग्रंथि के प्रारम्भ से लेकर आज तक हमारी जीवात्मा वर्तमान शरीर जैसे अनेक शरीरों के पड़ावों से होती हुई यहाँ तक पहुँची है। हर पड़ाव में इस जीवात्मा का अन्तिम लक्ष्य उस चिज्जड़ ग्रंथि को भंग कर अपने मूल स्वरूप को प्राप्त करना रहा है और हर पड़ाव में प्रकृति ने हमें इसके लिए अवसर और साधन उपलब्ध करवाये हैं ताकि हमारी यात्रा अपने गंतव्य की ओर गतिमान हो सके। हमारे इस जीवन में मानव के रूप में हमें जन्म मिला है। एक मानव के लिए क्या करणीय और क्या अकरणीय है? हमारे शास्त्रों में उस अन्तिम लक्ष्य तक की यात्रा की प्रक्रिया को धर्म नाम से संबोधित किया

है और इसी कारण मानव धर्म, क्षात्र धर्म, पुत्र धर्म आदि भूमिकाओं का नामकरण हुआ है। संघ हमें समझाता है कि मानव के रूप में हमारा धर्म क्या है? मनुष्य के रूप में प्रकृति ने हमें एक श्रेष्ठ कुल परम्परा में जन्म दिया है, उसके अनुरूप परिस्थितियाँ उपलब्ध करवाई है और अनुकूल मार्गदर्शन के लिए ऐसी पूर्वज परम्परा प्रदान की है जिसमें स्वयं भगवान ने अवतरित होकर अपना उदाहरण प्रस्तुत किया है। संघ हमें समझाता है कि ऐसी पूर्वज परम्परा में जन्म लेने वाले जीव के लिए उस अन्तिम लक्ष्य की ओर गतिमान होने के लिए क्या-क्या करणीय है और क्या-क्या अकरणीय है? संघ हमें बताता है कि उस अन्तिम लक्ष्य तक की यात्रा के इस पड़ाव में प्रकृति ने हमें क्षत्रिय के घर में जन्म दिया है इसलिए इस स्थूल शरीर के रूप में जन्म से लेकर मृत्यु तक की हमारी यात्रा का गंतव्य क्षात्र धर्म है और हम वर्तमान देश, काल और परिस्थितियों में इस शरीर यात्रा को सार्थक करने के लिए किस प्रकार क्षात्र धर्म का पालन कर सकते हैं। संघ इससे भी आगे बताता है कि इस शरीर के जन्म से लेकर मृत्यु तक की विभिन्न भूमिकाएँ हमें किस प्रकार उस अन्तिम लक्ष्य के अनुकूल यात्रा में सहयोगी बन सकती हैं। एक पुत्र के रूप में, एक पिता के रूप में, एक पति के रूप में, एक विद्यार्थी के रूप में एक व्यवसायी के रूप में, एक कर्मचारी के रूप में हमारी भूमिकाएँ कैसे उस गंतव्य की अनुगामी बन सकती हैं? संघ केवल उस गंतव्य का इतिवृत्तात्मक वर्णन कर उसकी महत्ता ही नहीं समझाता बल्कि उस महत्ता का हमारे जीवन में व्यवहारिक रूप से कैसे पदार्पण हो इसका क्रियात्मक पथ उपलब्ध करवाता है। एक मानव के रूप में, एक क्षत्रिय के रूप में, परिवार में व समाज में विभिन्न भूमिकाओं के रूप में हमारा दायित्व क्या है इसका बोध हमें संघ करवाता है। यह दायित्व बोध ही हमें उन भूमिकाओं का उस गंतव्य के अनुरूप निर्वहन के लिए प्रेरित करता है और परिणामस्वरूप हमारी वह भूमिका हमें उस गंतव्य की ओर अग्रसर करती है। इस प्रकार संघ संसार में मोक्ष के नाम पर सब कुछ छोड़ने का नहीं बल्कि प्रकृति द्वारा उपलब्ध करवाई गई परिस्थितियों को सहज स्वीकार कर उस ओर बढने का व्यवहारिक प्रशिक्षण देता है। संघ हमारे में उन परिस्थितियों की सहज भाव से स्वीकृति का अभ्यास करवाता है और फिर उस अन्तिम उद्देश्य के निमित्त उन परिस्थितियों के प्रति दायित्व बोध को जागृत कर उनसे पार पाने का मार्ग उपलब्ध करवाता है। संघ सब कुछ छोड़ने को नहीं बल्कि सब स्वीकार करने का अभ्यास है और उस अन्तिम लक्ष्य का सदैव स्मरण रखने का अभ्यास है जो जीवन यात्रा का गंतव्य है, उसका आदर्श फल है। इस प्रकार संघ समाज में किसी काल विशेष में उपस्थित परिस्थिति के निवारण मात्र का उपाय नहीं है बल्कि उस देश, काल और परिस्थिति से निरपेक्ष उस अन्तिम लक्ष्य की ओर प्रवाहित करने का मार्ग है जो हमारी युगों से चली आ रही जीवन यात्रा का आदर्श फल है। हम परमेश्वर से प्रार्थना करें कि वे हमें उसकी कृपा प्रसाद के रूप में प्राप्त श्री क्षत्रिय युवक संघ के मार्ग पर बनाये रखें और उत्तरोत्तर इस मार्ग में मेरी श्रद्धा को गहरा बनाते रहें ताकि हम हमारे जीवन लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकें।

❑

समाचार संक्षेप

पृष्ठ 4 का शेष

18 जुलाई को ही सूरत शहर में तथा 25 जुलाई को मोटी महुड़ी में चिंतन बैठक रही। गुरु पूर्णिमा के अवसर पर गुजरात के स्वयंसेवक आलोक आश्रम पहुँचे जहाँ माननीय भगवानसिंहजी ने उन्हें सेवा का सम्यक रूप समझाया।

श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन :

कार्य विस्तार योजना के तहत 24 व 25 जुलाई को नागौर, पाली व अजमेर जिलों में कार्य विस्तार बैठकें आयोजित की गई। लाडनू, जैतारण, रायपुर, सोजत, कोलायत, पूगल व सवराड में बैठकें सम्पन्न हुई।

❑

गतांक से आगे

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

– स्वामी जगदात्मानन्द

मन का टॉनिक :

सभी धर्मों से सत्य, ईमानदारी, उदारता तथा संयम का उपदेश दिया गया है। व्यक्तिगत और सामूहिक कल्याण का इच्छुक कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इन आदर्शों को अन्धविश्वास-मात्र कहकर इन्हें अनदेखा नहीं कर सकता। यहाँ तक कि कोई संशयी-बुद्धिवादी या वैज्ञानिक-दृष्टिकोण-सम्पन्न व्यक्ति भी इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। इन आदर्शों का लक्ष्य व्यक्तिगत उत्थान के साथ-साथ सामूहिक उत्थान भी है। ये आदर्श व्यक्ति को, न केवल सुखपूर्वक जीवन जीने, बल्कि अन्य लोगों को भी सुखी बनाने के लिए प्रेरित करते हैं।

दूसरों के कठोर वचनों और कृत्यों से आहत होने पर हमें कष्ट तथा पीड़ा का अनुभव होता है। वे ही वचन तथा कृत्य दूसरों को भी आहत करते हैं। अहिंसा मन का एक ऐसा सकारात्मक दृष्टिकोण है, जिसके द्वारा हम मन, वाणी तथा कर्म से सतत परहित में निरत रहते हैं। इसी तरह सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य एवं अलोलुपता जैसे अन्य सद्गुणों का अभ्यास व्यक्तिगत कल्याण के साथ सामूहिक कल्याण का भी पोषक है।

हमारे धर्मग्रन्थों में सत्य तथा ईमानदारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। महाभारत के ऋषिगण सत्य की महानता का उद्घोष करते कभी नहीं थकते। उसमें धर्मव्याध नाम के एक महापुरुष कहते हैं कि अहिंसा की जड़ें सत्य में स्थित होती हैं। सत्य की नींव के बिना वास्तविक प्रगति सम्भव नहीं है। वैज्ञानिकों ने सत्य की खोज के लिए निरंतर प्रयासों के द्वारा तथा उसकी गुत्थियाँ सुलझाने हेतु अपनी एकाग्र निष्ठा के द्वारा ही अद्भुत आविष्कार किए हैं। 'सत्यमेव जयते नानृतम'- 'सत्य की ही विजय होती है, मिथ्या की कदापि नहीं' - इस महान शिक्षा की सच्चाई सभी लोगों द्वारा समझी जा सकती है। गाँधीजी के लिए सत्य ही ईश्वर था। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा है, 'सत्यनिष्ठ व्यक्ति मानो भगवान की गोद में बैठा है।'

बात को घुमाए-फिराए बिना यथार्थ रूप से कह देना सत्य का एक रूप है। परन्तु इसके अपवाद भी हैं। कभी-कभी हम दूसरों को आहत करने वाले किसी अप्रिय या कटु सत्य को स्पष्ट रूप से नहीं कह सकते। दिए हुए वचनों को पूरा करना सत्य का दूसरा रूप है। कर्म के प्रति समर्पण इसका तीसरा रूप है। यद्यपि सत्यनिष्ठ लोग परहित में लगे रहकर अनेक कठिनाइयों का सामना करते हैं, परन्तु वे अपने पथ से विचलित नहीं होते। वे अपनी ईमानदारी और वादों को कभी भूलते नहीं। सत्याचरण द्वारा ही सत्यस्वरूप ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। अत: सत्य हमारे व्यक्तिगत व सामूहिक जीवन में तथा हमारे सामाजिक व्यवहार में ओतप्रोत होना चाहिए। स्कूलों तथा कॉलेजों में अध्ययनरत हमारे छात्रों के हृदय में सत्य का संस्पर्श रहना चाहिए। सामाजिक कल्याण का यही एकमात्र उपाय है। इन उदात्त सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक आचरण करने वाले किसी सत्यनिष्ठ और ईमानदार व्यक्ति को देखते ही लगता है कि वह चिन्ता, तनाव और क्रोध से मुक्त है। एक ईमानदार व्यक्ति अपने वचनों तथा कर्मों में एकरूपता लाने के प्रयास करता है। उसका विवेक पारदर्शी होता है तथा समझ सुस्पष्ट होती है। अपनी शक्तियाँ, दुर्बलताओं, प्रतिभाओं तथा सीमाओं के बारे में उसे कोई भ्रम नहीं रह जाता। वह सजगतापूर्वक अपने विशेष गुणों को निखारने और अपनी दुर्बलताओं तथा कमियों को घटाने हेतु प्रयत्नशील रहता है।

वह अपने सभी सगे-सम्बन्धियों तथा अन्य लोगों के साथ ईमानदारी का बर्ताव करता है। वह अपनी आय-व्यय का उचित हिसाब रखता है। वह अपने समस्त वादों की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील रहता है और किसी अपरिहार्य कारणों से उन्हें पूरा कर पाने में असमर्थ रहने पर वह क्षमा माँग लेता है। अनजाने में हुई अपनी गलतियों और कमियों के लिए वह बड़ों से क्षमा-याचना करता है और

अत्यन्त सजग रहता है कि वैसा दुबारा कभी न हो। वह बिना पूछे दूसरों की, यहाँ तक कि अपने परिवार के सदस्यों की वस्तुओं को भी कभी स्पर्श नहीं करता। दूसरों से कुछ उधार लेने पर वह उसे यथासमय लौटा देता है। पूरे परिवार के लिए बनी किसी चीज को वह अकेले ही चोरी-छिपे कभी नहीं खाता। घर के भीतर और बाहर सर्वत्र ही, उसके व्यवहार में एकरूपता होती है। ऐसे आदर्श आचरण के फलस्वरूप मनुष्य को शान्ति मिलती है और वह मिथ्या भयों से मुक्त हो जाता है। इससे उसे संतोष मिलता है, उत्तरदायित्व की भावना बढ़ती है और उस व्यक्ति का चरित्र सबल हो जाता है। वह दूसरों को प्रसन्न रखने का प्रयास नहीं करता, परन्तु उसका खरा चरित्र दूसरों को स्वयमेव प्रभावित करता है। अन्य लोग स्वेच्छया उसकी सहायता करने लगते हैं। लोग ऐसे व्यक्ति की प्रंशसा करके उसके सद्‌गुणों को अपनाने का प्रयास करते हैं। लोग न केवल उस पर विश्वास करते हैं, अपितु उसके अधिकाधिक संग की इच्छा भी करते हैं।

स्वच्छता, संतोष, साधना, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान- ये पाँच सद्‌गुण मनुष्य को पूर्णता के पथ पर ले जाते हैं। व्यक्ति को शारीरिक स्वच्छता और मानसिक शुचिता- दोनों पर ही ध्यान देना चाहिए। किसे ऐसे प्रसन्न व शान्त मन की चाह नहीं होती, जो चिन्ता, दुःख, क्रोध, अहंकार तथा ईर्ष्या से मुक्त हो? क्या कोई ऐसा चंचल मन चाहता है, जो सभी काम लापरवाही से करता रहे? हम सभी को इन्द्रियों तथा मन की एकाग्रता की जरूरत है। मन तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होने वाला अध्ययन ही हमारे लिए अत्यावश्यक है। मनुष्य को श्रद्धा तथा भक्ति के साथ परम शक्ति-परमेश्वर की शरण में जाना चाहिए।

इन आदर्शों को अपने जीवन में अपनाकर हम समस्त चिन्ताओं, दुःखों तथा उनके फलस्वरूप होने वाली मनो-दैहिक व्याधियों से मुक्त हो सकते हैं। उपरोक्त सभी सद्‌गुणों की प्राप्ति का एक सीधा मार्ग भी है। आध्यात्मिक रूप से अति उन्नत एक वरिष्ठ संन्यासी ने एक बार सलाह दी थी, 'इस संसार में हर किसी को प्रसन्न रख पाने का मूर्खतापूर्ण प्रयत्न छोड़ दो।' 'भगवान सब कुछ देख रहे हैं'- यह दृढ़ विश्वास ही हमें सजग और सावधान बना देता है। 'ईश्वर हमारी मदद हेतु सदैव तत्पर हैं'- ऐसा दृढ़ विश्वास हमें अधिक उत्साहपूर्वक अपनी साधनाओं को जारी रखने की प्रेरणा देता है। 'ईश्वर सर्व-शक्तिमान और परम दयालु हैं'- ऐसा प्रबल विश्वास हमारी समस्त असुरक्षा-भावना तथा भय को दूर करके हमें भगवान की शरण लेने में सहायता करता है। 'ईश्वर हमारी माँ हैं तथा समस्त सुखों का एकमेव मूल हैं'- ऐसा जान लेने पर सांसारिक वस्तुओं का आकर्षण चला जाएगा। जब मन स्पष्ट रूप से समझ लेता है कि ईश्वर की कृपा से सब कुछ सम्भव है, तब हम अधिक उत्साहपूर्वक उनकी अनुभूति का प्रयास करने लगते हैं। इस प्रकार ईश्वरान्वेषी साधक में उक्त दसों सद्‌गुण प्रकट हो जाते हैं। कार्य करते समय हमारा मन वर्तमान में ही केन्द्रित रहना चाहिए। मन में अतीत या भविष्य का चिन्तन नहीं होना चाहिए। मनुष्य को ईश्वर पर निर्भरशील होना चाहिए। प्रतिकूल परिस्थितियों से हतोत्साहित नहीं होना चाहिए। सही समय आने पर भगवान की कृपा अवश्य होगी। हर व्यक्ति को अपना कार्य पूरी लगन से करना चाहिए और साथ-ही-साथ अपनी आध्यात्मिक साधना भी जारी रखनी चाहिए। कुछ लोग तेजी से आगे निकल सकते हैं और कुछ पीछे छूट सकते हैं। कुछ लोगों में विशेष गुण तथा शक्तियाँ हो सकती हैं और दूसरों में उनका अभाव हो सकता है। इन भेदों के बावजूद सभी लोग भगवान की ही सन्तान हैं। इन समस्त व्यक्तिगत भेदों को भुलाकर हमें सामूहिक रूप से और दक्षतापूर्वक अपना कार्य करना चाहिए।

इस सहज परामर्श में धर्म का सार निहित है। जब तक हम अपनी सारी समस्याओं का आध्यात्मिक समाधान नहीं पा लेते, तब तक मानसिक शान्ति की प्राप्ति असम्भव है।

विश्वास से सफलता :

भले कर्मों से व्यक्ति को परम कल्याण तथा सफलता प्राप्त होती है- ऐसे दृढ़ विश्वास तथा आत्म-

विश्वास का मूल स्रोत ईश्वर पर विश्वास है। एक वैज्ञानिक और एक साधक- दोनों ही विश्वास की पूजा करते हैं। विश्वास ही जीवन है। विलियम जेम्स ने कहा है, 'विश्वास उन शक्तियों में से एक है, जिनके सहारे मनुष्य जीवित रहता है और इसके पूर्ण अभाव का अर्थ है विनाश।' विश्वास आध्यात्मिक विश्वास की नींव है। यही ईश्वरीय कृपा प्राप्त करने का साधन है। विश्वास से सब कुछ सम्भव है। क्या एक ही दिन में ऐसा अचल-अटल विश्वास प्राप्त कर पाना सम्भव है?

ईश्वर के प्रति ऐसा विश्वास अर्जित करने के लिए साधक को दिन-रात, सर्वदा ईश्वर-चिन्तन करते हुए, पथ की सफलता-विफलता को नजरंदाज करते हुए, सभी सुख-सुविधाओं को त्यागकर, ज्ञान-विनय का आश्रय लेकर प्रयत्नशील रहना होगा। जैसे तैराकी सीखने के लिये जल में कूदना ही पड़ता है, वैसे ही विश्वास की प्राप्ति के लिए साधक को साधना-सिन्धु में कूदना पड़ता है। तैरने का अभ्यास करने वाला व्यक्ति प्रारम्भिक अवस्था में भयभीत और विफल हो सकता है, परन्तु प्रारम्भिक विफलताओं के बाद तैरना छोड़ देने से क्या कोई तैरना सीख सकेगा? इसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन में भी सच्चा व सतत् प्रयत्न जरूरी है। असफलता मिले तो भी क्या? हमें आगे बढ़ते ही जाना चाहिए। मानसिक तनावों से छुटकारा पाने हेतु हम शान्ति के सभी उपलब्ध तकनीकों का प्रयोग कर सकते हैं, पर साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि स्थायी शान्ति केवल आध्यात्मिक साधना से ही सम्भव है।

विश्वास भय को खा जाता है :

जमीन पर रखे एक-एक फुट चौड़े लकड़ी के पटरे पर एक बालक से चलने को कहो। वह निर्भय होकर उस पर चलता है। अब उसी पटरे को जमीन से बीस फीट ऊपर रखकर बालक से उस पर चलने को कहो। नीचे गिर जाने का भय उसके हृदय को जकड़ लेता है। कोई प्रोत्साहन-वाणी या पुरस्कार का प्रलोभन भी उसे उस कार्य को करने के लिये प्रेरित नहीं करता। पुरस्कार के आकर्षण के बावजूद भय उसकी इच्छाशक्ति पर हावी हो जाता है। वही बालक जो भय से मरा जा रहा था, धीरे-धीरे वही कार्य करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। थोड़ा-थोड़ा करके उस पटरे की ऊँचाई बढ़ाओ, तो बालक निर्भय होकर उस पर चलना सीख लेता है।

मन के संदेह और भय से मुक्त होने पर विश्वास और बल प्राप्त होता है। प्रारम्भ में वह बालक उतनी ऊँचाई पर रखे हुए पटरे पर चलने से इसलिए डर रहा था, क्योंकि वह कदम लड़खड़ा जाने के भय से ग्रस्त था। परन्तु क्रमिक प्रशिक्षण ने उसे नकारात्मक भावनाओं पर विजय प्राप्त करने में समर्थ बना दिया और उसके स्थान पर विश्वास का भाव सुदृढ़ हो गया। बार-बार के अनुभवों के परिणाम से आत्मविश्वास आता है।

अब हम किसी व्यक्ति के आत्मविश्वास के बारे में इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि यह उसकी सकारात्मक तथा विधेयात्मक धारणाओं का कुल योग है। पिछले उदाहरण में, बीस फीट की ऊँचाई पर खड़ा हुआ वह बालक अति भयाक्रान्त था, पर नियमित अभ्यास से उसका भय चला गया और उसकी जगह 'हाँ, यह सम्भव है' की सकारात्मक धारणा स्थापित हो गई। अत: विश्वास एक सकारात्मक दृष्टिकोण है, जो बार-बार के अनुभवों तथा प्रयत्नों से दृढ़ होता जाता है। विश्वास किसी साधारण धारणा से भिन्न है। तुम विश्वास के आधार के बिना अनेक धारणाएँ रख सकते हो, परन्तु धारणाओं के आधार के बिना कभी विश्वास नहीं हो सकता। अत: विश्वास प्रायोगिक शोधों द्वारा विकसित तथा अनुभवों द्वारा सत्यापित एक रचनात्मक धारणा है। यदि उस बालक ने उतनी ऊँचाई पर चलने का आत्मविश्वास विकसित कर लिया है, तो 'मैं इतनी ऊँचाई पर चल सकता हूँ' - उसकी यह धारणा दृढ़ हो चुकी है, अत: उसमें भय के भाव नहीं आते। इसलिए विश्वास मन का एक सकारात्मक तथा विधेयात्मक दृष्टिकोण है।

हमारा मन सदैव ही भय, घृणा, निन्दा तथा कष्ट की भावना का विरोध करता है। बार-बार विफल होने की

वजह से उत्पन्न कष्ट, घृणा तथा भय की भावना, तथा यह भावना कि 'मैं यह कार्य नहीं कर सकता', ही युवकों को आलसी बनाती है। हमें प्रयास करना होगा कि बच्चे कुछ उपलब्धि कर सकें तथा विफलताओं से हतोत्साहित न हों; वे बारम्बार प्रयास में प्रोत्साहित होकर अन्ततः सफलता प्राप्त करें। हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि उनका आत्मविश्वास दिन-पर-दिन बढ़ता रहे।

शिक्षा में आत्मविश्वास का सर्वोपरि महत्त्व है। शिक्षकों को बड़े धैर्यपूर्वक बच्चों में आत्मविश्वास बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। क्या यह सबके लिये एक चिन्तनीय विषय नहीं है?

भय दरवाजे पर दस्तक देता है। विश्वास दरवाजा खोलकर पूछता है, 'कौन है?' वहाँ तो कोई भी नहीं है। विश्वास की आवाज सुनते ही भय सिर पर पाँव रखकर भाग जाता है।

स्वयं में विश्वास और ईश्वर में विश्वास- ये ही सफलता तथा उपलब्धि की कुंजियाँ हैं।

भय का भण्डार :

बहे जा रहे एक विशाल हिमशैल का मात्र एक छोटा-सा अंश ही जल की सतह पर दृष्टिगोचर होता है। हिमशैल का विशाल अदृश्य भाग जलमग्न रहता है। इसी भाँति हमारे मन का अल्पांश ही सतह पर क्रियाशील रहता है और शेष भाग अवचेतन में छिपा रहता है। अवचेतन मन के अधिकांश क्रिया-कलापों को हम समझ नहीं पाते। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि हमारे अधिकांश व्यवहार, दृष्टिकोण तथा भावनाएँ इस अवचेतन मन द्वारा ही नियंत्रित होती हैं। हम प्राय: अपने भय तथा पीड़ा के कारण से अनभिज्ञ रहते हैं। उनकी जड़ें मन की गहनतर परतों में छिपी होती हैं। भय इस गहराई के अदृश्य उद्गम में रहकर हम पर शासन करता है। अचेतन या अवचेतन मन भय की आधारभूमि या भण्डार है।

भय : एक रक्तपिपासु दैत्य :

भय की कुछ ग्रन्थियाँ सभी मनुष्यों को प्रताड़ित करती हैं। बाह्य रूप से हम उनकी अभिव्यक्ति को नहीं देख सकते, पर वे अवचेतन स्तर पर पीड़ित करती हैं। सामान्य भय एक तरह से सुरक्षात्मक होता है। यह हमें सावधान करके वर्तमान और भविष्य के खतरों से आगाह कर देता है। परन्तु काल्पनिक तथा आधारहीन भय हमें कदम-कदम पर परेशान करता है और दुर्बल बनाते रहता है। यह मन में दुर्बलता लाने वाली एक बीमारी है। यह हमारी शक्ति नहीं, अपितु हमारी दुर्बलता तथा असमर्थता को व्यक्त करता है। हमारी दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक दुर्बलता का एकमात्र कारण भय ही है।

कुछ देशों में लोग ऐसे विशालकाय चमगादड़ों में विश्वास करते हैं, जो रात में जाकर लोगों का खून पीया करते हैं। ये तथाकथित चमगादड़ तो केवल निद्रा के समय ही खून पीते हैं, परन्तु काल्पनिक भय जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति- तीनों ही अवस्थाओं में हमारा खूने पीता रहता है। जैसे कीटाणु और रोगाणु केवल गन्दे तथा अस्वच्छ स्थानों में ही जन्म लेते हैं, वैसे ही भय भी केवल अज्ञानी मनों में ही उत्पन्न होता है। निर्भयता भी मन की ही एक वृत्ति है। कुछ लोग बचपन से ही, अपने माता-पिता अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण, भय की इस दूषित प्रवृत्ति से ग्रस्त होते हैं। केवल कुछ विरले भाग्यवान लोग ही सदैव निर्भय रहना सीख पाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि साहस, स्थिरता, बल तथा धैर्य आदि भय की दुर्बलकारी भावनाओं को दूर कर सकते हैं। एकमात्र मन ही किसी की सफलता, समृद्धि और उसके दु:ख-कष्टों के लिए भी उत्तरदायी है- यह प्रार्थना उक्ति आज भी उतनी ही सत्य है।

भय के परिणाम :

भयग्रस्त होने पर हमारे दिल की धड़कन बढ़ जाती है, शरीर काँपने लगता है और श्वास-प्रश्वास असन्तुलित हो जाती है। हमें पसीना आने लगता है। हमारी विचार-शक्ति धूमिल हो जाती है और हम पूर्णतया हतप्रभ रह जाते हैं। ऐसी स्थितियाँ हमारे शरीर तथा मन- दोनों को ही अशक्त करके हमारे विश्वास को चकनाचूर कर देती है। भय से पीड़ित कोई भी व्यक्ति उचित ढंग से कार्य नहीं

कर सकता। मानवता को अनिद्रा, सम्भ्रम तथा उच्च रक्तचाप आदि इसके उपहार हैं। कुछ संक्रामक भय निराधार होते हैं, तथापि वे व्यवहार में असामान्यता ला देते हैं। भयभीत लोग सभी प्रकार के जघन्य कृत्य कर बैठते हैं। एक विशेषज्ञ का कहना है कि प्रतिवर्ष साँप काटने से एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाने के कारण हजारों साँपों को निर्दयतापूर्वक मार डाला जाता है। इस क्रूर आचरण के पीछे सूक्ष्म रूप से आतंक ही कार्य करता है। भय सर्वत्र ही अपना भयावह सिर उठा रहा है। विकासशील देशों को अमेरिका से भय लगता है, अरब लोग यहूदियों से और यहूदी अरब लोगों से भयभीत हैं। श्वेत अश्वेतों से तथा अश्वेत श्वेतों से भयभीत रहते हैं। मनुष्य की स्वार्थपरता के कारण राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, धार्मिक और सामाजिक- जीवन के सभी क्षेत्रों में भय का बे-रोकटोक शासन चलता है। भय से सन्देह, सन्देह से क्रोध, क्रोध से हिंसा और हिंसा से विनाश का पथ प्रशस्त होता है। भय के कारण सभी उत्तम गुण नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य हिंसक पशु बन जाता है। यह आकाश में नहीं, बल्कि मानव-मन में रहता है। यद्यपि बमों का निर्माण कारखानों में होता है, परन्तु उनका मूल मानव-मन में छिपे हुए भय में होता है। अत: इसे जड़सहित उखाड़ फेंकना होगा। किसी राष्ट्र द्वारा अनुभूत भय उसकी जनता का सामूहिक भय है। एक निर्भय महान नेता अपने साहस, पराक्रम और उदात्त आदर्शों के द्वारा मानव-समाज के भाग्य को पलट देता है।

क्या हमें स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गाँधी के जीवन में ऐसी महानता के दर्शन नहीं होते? जब भारतवासियों ने अंग्रेज सैनिकों की गोलियों से डरना बन्द कर दिया, तब अंग्रेजों को भारत छोड़कर वापस लौटना पड़ा।

भय के विभिन्न प्रकार :

महाभारत में भीष्म पितामह कहते हैं कि राजा समकालीन समाज पर अपना प्रभाव डालता है। इसलिए नेतागण और उच्च पदस्थ लोग आम जनता के जीवन में परिवर्तन ला सकते हैं। वे जनसाधारण को सद्भाव, सहयोग तथा निर्भयता के आदर्शों से अनुप्राणित कर सकते हैं। भारत पर आक्रमण करने वाले विदेशी आक्रान्ता और भारत के बारे में अध्ययन करने आए विद्वान यात्री कुछ राजाओं के शासन-काल के दौरान भारत में प्रचलित उच्च नैतिक मानदण्डों का गुणगान कर गए हैं। पर पदलोलुप, अदूरदर्शी, जनता के प्रति सहानुभूति से रहित और अनेक बन्धनों से जकड़े हुए नेतागण भला क्या उपलब्धि दिखा सकते हैं? अपनी शक्ति के छिन जाने के भय से पीड़ित ये नेतागण जनता के मन में भय का बीजारोपण करके उनमें फूट डालते रहते हैं। वैसे हम समूचे संसार को तो नहीं सुधार सकते, परन्तु अपना सुधार अवश्य ही कर सकते हैं। कार्लाइल ने कहा था, 'यदि तुम स्वयं को बदल लो, तो संसार को कम-से-कम एक मूर्ख से छुटकारा मिल जाएगा।' यदि व्यक्तिगत जीवन से भय चला जाए, तो सामुदायिक जीवन स्वयं ही भयमुक्त हो जाएगा।

मनुष्यों को त्रस्त करने वाले भय विभिन्न प्रकार के हैं। इनमें से कुछ हैं –

विभिन्न रोगों का भय
विषैले सर्पों का भय
भूत-प्रेतों और काले जादू का भय
आनुष्ठानिक अशुचिता का भय
निर्धनता और अपमान का भय
प्रियजनों से वियोग का भय
कारोबार में घाटे का भय
(छात्रों में) परीक्षा का भय
गलत कार्यों के लिए सजा पाने का भय
अपने ही लोगों द्वारा छले जाने का भय
ऋणग्रस्त होने का भय
सरकार द्वारा सम्पत्ति के जब्त होने का भय
चोरों और डकैतों का भय
युद्ध तथा विनाशकारी हथियारों का भय
प्रदूषित पर्यावरण का भय
मृत्यु और नरक की यातना का भय

क्या तुम जानते हो कि भय का कठोर फन्दा व्यक्ति को किस प्रकार उत्पीड़न करता है? **(क्रमश:)**

शाको शेखावत संग्रामसिंह को

– सम्पतसिंह धमोरा

राव शेखाजी से पांचवी पीढ़ी में भोजराज जी हुए, जिन्होंने उदयपुरवाटी परगने पर अपना शासन स्थापित किया। उनके पुत्र टोडरमल जी ने अपनी जागीर को अपने बेटों में बराबर का बंटकर, उस वक्त राजपूतों में प्रचलित टिकाई प्रथा अर्थात बड़े बेटे को जागीर और छोटे भाईयों को गुजारे योग्य जमीन देकर बड़े भाई की चाकरी की प्रथा को समाप्त किया। इसी क्रम में टोडरमल जी के बेटे भीमसिंह जी को चार गाँवों के साथ मण्डावरा की जागीर मिली। जहाँ पर उनके चार पुत्रों कुँवर संग्रमासिंह, बाघसिंह, आईदानसिंह व जगमालसिंह का जन्म हुआ।

''उदय सिंघ रै चार सुत धरन धरा री ढ़ाल।
संग्राम अरू बाघ भड़ आयिदान जगमाल।''

उस युग में वर्तमान झुन्झुनू जिले (शेखावाटी) के उस भू-भाग में अनेक छोटी-छोटी नवाबियाँ थी और उनके शासक अमर्यादित उच्छृखंल व्यवहार आमजन के साथ किया करते थे। जिससे उस क्षेत्र में भय और आतंक का खौफ था। कुँवर संग्रामसिंह उदयपुरवाटी परगने में एक हठीले, शौर्यवान, साहस और मजबूत कद-काठी के जनहित में निर्णय लेने वाले नौजवान के रूप में अपनी पहचान बना चुके थे। जिसके चर्चे पूरे परगने में थे।

उस जंगलराज में पपुरणा का नवाब जो कि दिल्ली की तत्कालीन सल्तनत का नजदीकी रिश्तेदार था और उसने कुछ समय पूर्व ही अपने निर्बाण (चौहान) वंश से धर्मपरिवर्तन कर इस्लाम स्वीकार किया था। जनश्रुति यह है कि नवाब अभिमानी, अहंकारी और व्यभिचारी था, जिसका आतंक और भय क्षेत्र में फैला हुआ था। नवाब की दोस्ती ग्राम धमोरा के नजदीक ही परसरामपुरा के नवाब से थी। जिससे मिलने के लिए वह एक दिन पहले अपने कुछ कारिन्दों के साथ परसरामपुरा आया और रात्रि विश्राम के दूसरे दिन प्रात: घोड़े पर सवार हो अपने कारिन्दों के साथ वापस पपुरणा के लिए प्रस्थान किया जो ग्राम धमोरा में से होकर गुजर रहा था। इस दौरान वर्तमान धमोरा के गढ़ की पोल के सामने स्थित खारिया कुआ की पनघट पर महिलाएँ कुँए से पानी निकाल रही थी, जिनमें पूनिया जाट परिवार की एक सुन्दर, किशोरावस्था की पणिहारी युवती भी शामिल थी। युवती पर नजर पड़ते ही आतताई नवाब अपनी पर आ गया और उसने जबरन युवती को खेंच कर घोड़े पर बैठा लिया और घोड़े दौड़ा दिये। युवती चीखती, बिलखती मदद की गुहार करती रही और कुएं पर पानी भरने वाली पणिहारियाँ भी बिलख-बिलख कर रोती हुई सहायता के लिए पुकार करने लगी। उसी समय रोने, बिलखने का हल्ला सुनकर ग्रामीणजन वहाँ समूह में इकट्ठा हो गये। संयोगवश उसी समय कुंवर संग्रामसिंह अपने पिता की जागीर को सम्भालने एवं माळ (लगान), वसूली के लिए मण्डावरा से वहाँ आये ही थे। जब उन्होंने महिलाओं को चीखते-बिलखते हुए देखा और वहाँ इकट्ठा लोगों के चेहरे पर मायूसी देखी तो उन्होंने पूछा कि यह कोहराम कैसे हो रहा है? क्या कोई अनहोनी घटी है या किसी आतताई की परछाई आप लोगों पर पड़ी है? उपस्थित लोगों ने कुँवर को बताया कि पपुरणा का नवाब बलपूर्वक, बाहुबल से पूनिया परिवार की युवती को पनघट से उठा ले गया, यह आपके राज में क्या हो रहा है?

''पुत्री पुन्या जाट री पनघट री पणि हार।
पपराणौ पति पकड़ली, बनिता भाव बिचार।।
जाट जाटणी झुररिया और आखो गांम।
कान भणक हुई कंवर रै, साम्यो खग संग्राम।।

यह समाचार सुनकर नौजवान कुँवर नवाब की नादिरशाही को सहन नहीं कर पाया और अपहरण की गई युवती को छुड़ाने के लिये कुँवर संग्रामसिंह ने तत्काल अपने

साथ आये बजावा के रावतका सरदार जो उनके यहाँ नौकरी करते थे तथा महार के ठाकुर के छुटभाई थे, के साथ घोड़े पर सवार नवाब का पीछा किया। ग्राम हरड़िया (तहसील खेतड़ी) की सीमा पर चिंचड़ोली के जोहड़ की उदक की जमीन में नवाब से आमना-सामना हुआ। कुँवर ने नवाब को ललकारा कि-'अरे निर्लज आतताई हमारे जिन्दा रहते युवती को जबर्दस्ती अपहरण कर कहाँ ले जा रहा है, क्या तूने अपने जीवन की खैर मनायी है? रुक! हमसे मुकाबला कर और अपनी मर्दानगी का परिचय दे।' कुँवर संग्रामसिंह अपने साथी सरदार के साथ नवाब के काफिले पर भूखे सिंह की तरह टूट पड़ा। चिंचड़ोली के जोहड़ में तलवारें बिजली की तरह चमकने लगी और प्रजा की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले योद्धा अन्याय के खिलाफ लोहा लेने लगे। नवाब के कारिन्दे हताहत हो मैदान छोड़ने लगे और कुछ ही देर में कुँवर का सीधा मुकाबला नवाब से हो गया। इस दौरान युवती हड़बड़ाये नवाब के चंगुल से निकल घोड़े से कूदकर मुक्त हो गई। बिफरे हुए नवाब ने जिसके हाथ से शिकार निकल गई थी, क्रोधित हो घायल कारिन्दों के साथ कुँवर संग्रामसिंह और उसके साथी पर आक्रमण किया। इस दौरान कुँवर का सहयोगी रावतका सरदार बहादुरी से लड़ता हुआ खेत रहा।

''नावड़ियो नाहर निडर, हरड़ियो हद हल्ल।
नवाब छोड़ी नानची, आरा बचा उण पल्ल।।''

निडर कुँवर आक्रान्ताओं से घिर उनके वारों को झेलता हुआ बहादुरी से लड़ता हुआ शौर्य और साहस का परिचय दे रहा था। उसी वक्त पलक झपकते ही नवाब की तलवार का एक वार पीठ पीछे से कुँवर की गर्दन को काटता हुआ पार निकल गया और गर्दन धड़ से अलग हो गई। संग्रामसिंह ने अपने नाम को चरितार्थ करते हुए झुंझार होकर बिना सिर के जुल्मी आक्रान्ताओं का संहार करना शुरू किया और चारों ओर हाहाकार मच गया। हरड़िया की सरहद में खून की तलाई भर गई। आक्रान्ताओं के सिर से अलग हुए धड़ चारों ओर पड़े हुए थे और घायलों की चीत्कार मची हुई थी। घायल पपुरणा का नवाब जान बचाकर युद्ध का मैदान छोड़कर भाग निकला। तपते सूरज की रोशनी में सूर्य को साक्षी रख आखिर बहादुर, झुंझार संग्रामसिंह का धड़ महाप्रयाण की ओर अग्रसर हो धरती माता की गोद में विक्रम संवत 1753 में हमेशा के लिये सो गया।

भिड़ियो दोनो भभक भड़ खड़ग पकड़िया हत्थ।
खेत रहयो संग्राम खग, धड़ नाच्यो बिन मत्थ।।

''लड़िया अर लड़सी घणां, धरा धरम रै काज।
बिरळा रगत बहावसी, परनारी की लाज।।''

गाँव से कुँवर संग्रामसिंह ने जब जुल्मी नवाब से पणिहारी युवती को बचाने के लिए पीछा करते हुए घोड़ा दौड़ाया उसी दौरान हाका सुन पूरा गाँव कुएं की मुंडेर पर इकट्ठा हो गया। गाँव के कुछ साहसी नौजवान और जबरे मर्द अपने ऊँटों पर सवार हो अपने हथियार लाठी, बरछी तथा भाले आदि ले कुँवर का सहयोग करने एवं युवती को छुड़ाने के लिए कुँवर एवं उनके साथी घुड़सवार के खोजों (जिस रास्ते से वे गये) के पीछे बाहर चढ़े (सहयोग करने के लिए आगे बढ़े)। जब तक गाँव के लोग सहयोग के लिये पहुँचे, उस वक्त तक बहुत देर हो गयी थी और उनका लाड़ला, साहसी, रणबांकुरा, कुँवर संग्रामसिंह झुंझार होकर अपने प्रजाजनों के सम्मान की रक्षा करता हुआ, एक जाट युवती के सतीत्व की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग कर कीर्ति शेष रहा। हरड़िया की सीमा में युद्ध स्थल पर रक्त का कीच मचा हुआ था। नवाब के आतताई साथियों के क्षत-विक्षित अवस्था में शव भूमि पर पड़े हुए थे। घायलों की चीख सुनाई दे रही थी और वहीं दूसरी ओर कुँवर का सहयोगी साथी रावतका सरदार अपना कर्तव्य पूरा कर पृथ्वी की गोद में चिरनिद्रा में सोया हुआ, कुँवर के सिर कटे धड़ को देखता हुआ, कुँवर की बहादुरी की साक्षी दे रहा था। वहीं कुँवर का घोड़ा उसके बहादुर मालिक, जिसने प्रजा हित में नारी सम्मान के रक्षार्थ प्राण देकर स्वर्गारोहण किया, उनके अलग-अलग हुए सिर और धड़

की रक्षा कर अपनी स्वामीभक्ति का परचिय दे रहा था। इस खामोश शान्ति के बीच एक पेड़ की छाया में अबोध पूनिया जाट की युवती डरी, सहमी पथराई आँखों से खड़ी हुई थी और अपने रक्षक गाँव के धणी के जज्बे को मन में याद कर परम-पिता परमेश्वर से दया की भीख माँगते हुए कुछ समय पूर्व अपनी आँखों के सामने घटे घटनाक्रम को याद कर भयभीत थी। जब युवती ने अपने पिता, भाईयों, परिजनों को देखा तो दौड़कर अपने पिता से लिपट सिसकते हुए निर्झर आंसू बहाने लगी। गाँव से आये हुए लोग कुँवर का सिर और धड़ तथा उनके साथी रावतका सरदार की देह गाँव धमोरा में लेकर आये। जहाँ उनका अन्तिम संस्कार, शंख ध्वनि और मंत्रोच्चारण के बीच पूर्ण सम्मान से हुआ और प्रजाजनों ने अश्रुपूरित नेत्रों से अपने लाड़ले कुँवर को विदाई दी।

जगत भलां मत जांण जो, म्है जाणूं संग्राम।
चिंचड़ेली का जोड़ मै बिन मत्थ लड़्यो, कियो जगत में नाम।।
मरणौ पण हटणौ नहीं, आ रण खेतां री रीत।
भली निभाई उदयसिंध रा, रजवट हंदी रीत।।

इतिहासकार सवाईसिंह धमोरा के अनुसार कुँवर संग्रामसिंह जी एवं उनके पिता ठाकुर उदयसिंहजी की स्मृति में दो अलग-अलग चबूतरों का निर्माण उनके वंशजों द्वारा वर्तमान में ग्राम धमोरा में स्थित भगवान गोपीनाथ जी के मंदिर के पीछे एवं पास में करवाया गया था। तत्समय वहाँ पर गोपीनाथ जी का मंदिर नहीं बना हुआ था और उन दोनों भौमियों ठाकुर उदयसिंह और संग्रामसिंह के चबूतरे वहाँ स्थित होने के कारण उस भूमि पर बाहजोत नहीं होती थी और उस बणी को भौमिया जी की बणी के नाम से जाना जाता था, जहाँ खेरी का सघन जंगल था। गोपीनाथ जी के मंदिर का निर्माण कालान्तर में इन भौमियों के वंशज जब इनके हिस्से के गाँव धमोरा में आकर बसे तो उन्होंने करवाया। संग्रामसिंह जी की संतानों में उनके सड़पौत्र बिंजराजसिंह धमोरा आकर बसे और उन्होंने दो मंजिली दो चौक की दो सुन्दर हवेलियों का निर्माण करवाया। इन दोनों ही भौमियों के स्थानों पर उदयसिंह जी के वंशजों अथवा गाँव में लड़के-लड़कियों की शादियाँ होती है तो नवविवाहित जोड़ा गठजोड़े की जात लगाकर भौमियों से आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। पाग के दस्तूर के बाद ठाकुर गोपीनाथजी के मंदिर में धौक देने के लिए जाता है, तत्पश्चात् दोनों भौमियों के स्थान पर भी धौक देने की परम्परा है।

कुँवर संग्रामसिंह के पिता ठाकुर उदयसिंह हरीपुरा के युद्ध विक्रम संवत् 1754 में खण्डेला के राजा केसरीसिंह के पक्ष में बादशाह औरंगजेब द्वारा भेजी गई फौज के खिलाफ लड़ते हुए झुंझार होकर वीरगति को प्राप्त हुए। इस युद्ध में शेखावतों की सभी खांपों के सरदार खण्डेला के राजा के पक्ष में लड़ने के लिए शामिल हुए। ठाकुर उदयसिंहजी के संबंध में 'केसरीसिंह समर' नामक ग्रंथ के लेखक ने लिखा है कि -

''ऊदो भींव भीम री भांति मण्डे'' ।।261।।

- के.स. पृ. 117

भावार्थ- मण्डावरा के ठाकुर भीमसिंह का बेटा उदयसिंह हरीपुरा के युद्ध में ऐसा भीड़ा जैसे महाभारत में बहादुरी से भीम भीड़ा।

भोजों में सूर हिमंद दा भूप।
भीम दा उदा शेखों दा रूप ।। 96।।

- के.स. पृ. 87

भावार्थ- भोजराज जी के शेखावतों में शूरवीर, राजाओं में हिम्मतवाला, भीमसिंह का बेटा, महाराव शेखाजी के पदचिन्हों पर चलने वाला।

इस युद्ध के सम्बन्ध में एक दोहा कवि एवं इतिहासकार श्री सवाईसिंह धमोरा ने भी लिखा है-

हरख हियो हरी सूं मिल्यो जूट हरीपुर जंग।
पोता टोडर माल रा रंग उदयसिंह रंग।।

भीमसिंहजी के बड़े भाई पुरुषोत्तम दास जी झाझड़ का बेटा पृथ्वीसिंह उदयसिंहजी के बड़े बाप का बेटा भाई भी हरीपुरा के युद्ध में उदयसिंह के साथ कंधा से कंधा

मिलाकर बहादुरी से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ था, जिसके संबंध में केसरीसिंह समर नामक ग्रंथ के लेखक ने लिखा है –

परस दा पीथल भारथ दा भीम।
थरसैल ठौर सबु दी सीम।।
गजों को विभारण लजौ दा मेर।
मौजौं दा मासर फौजुदा सेर ।। 96 ।।

– के.स. पृ. 87

पीथल अच्चल परसै सजाव।
सनमुख लड़ै जु करी जुद्ध घाव ।।248।।

– के.स. पृ. 248

पृथ्वीसींघ पर्सा तणु जंग चाहे।
धरे ढ़ाल सींस गजां फौज गाहे ।।260।।

– के.स. पृ. 127

उपरोक्त वर्णित ठाकुर उदयसिंहजी एवं कुँवर संग्रामसिंह जी के स्मृति शेष चबूतरों की दुर्दशा पर भी कवि एवं विद्वान श्री सवाईसिंह धमोरा ने अपना दर्द इस दोहे के माध्यम से बयां किया है। जो नौजवान भाईयों के लिये प्रेरणादायी है एवं उनके उत्साह को जगाने वाला है–

दो–दो भोम्या जीव दे, कर इतिहासां नाम।
देवल बांका ढ़ह गिया, कुण करवायै काम।।
बांका वंशज मोकला, अन धन घणो अपार।
कीनै ही आ सुध नहीं, करणों जीर्णोधार।।

कुँवर संग्रामसिंह की मातमपुरसी के पश्चात् उनके छोटे भाई जगमालसिंह ने भाईपे को उदयपुरवाटी की बारादरी में आमंत्रित किया। जिसमें भाईपे ने निर्णय लिया कि कुँवर संग्रामसिंह के खून का बदला नवाब से लिया जाये तथा उसको दण्डित किया जावे। जिसमें पैंतालिसा के भाईपे के सरदारों ने संगठित हो जगमालसिंह के नेतृत्व में पपुरणा के नवाब पर हमला किया। जिसमें नवाब मारा गया तथा नवाबी का अन्त हुआ। उसके कब्जे के गाँवों पर उदयपुरवाटी के भोजराजजी के शेखावतों का कब्जा हो गया। चूंकि जगमालसिंह के भाई कुँवर संग्रामसिंह हरड़िया की हद में नवाब से युद्ध करते हुए जुझार हो गये थे अत: हरड़िया उदयसिंहजी के वंशजों के हिस्से में आया। जहाँ पर जागीर अधिग्रहण से पूर्व तक उनके वंशजों का कब्जा था तथा वर्तमान में उनके वंशजों की कोटड़ियाँ हरड़िया में स्थित हैं। इस युद्ध में धुला और अरिसाल का वर्णन जगमालसिंह के साथ युद्ध करते हुए आता है। धुला और अरिसाल कौन थे यह शोध का विषय है।

बदलो लीनो वीर रो, जंग जूझ जगमाल।
पपराणौ पति पाड़ियों, संग धुला अरिसाल।।

जिस पुनिया जाट परिवार की युवती का अपहरण नवाब ने किया था उनकी गुवाड़ी वर्तमान में धमोरा में स्थित करणी माता के स्थान के आसपास स्थित थी। कालान्तर में यह परिवार ग्राम धमोरा से बायबिरोल में जाकर बस गया। जहाँ उसके वंशज आज भी निवास करते हैं।

नारी के सम्मान के रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग की उज्ज्वल परम्परा को कायम रखते हुए शेखाजी के वंशजों में भोजराजजी के पौते भीमसिंह के पौते दौलसिंह अर्थात् कुँवर संग्रामसिंह के काका के बेटे भाई दौलसिंह के सड़पौते मेहताबसिंह ने परसरामपुरा ठिकाने के मुसाहिब की पुत्री जो चूड़ी अजीतगढ़ ब्याही गई थी के सम्मान की रक्षा करते हुए वीरगति प्राप्त की। मुसाहिब की पुत्री अपने ससुराल आ रही थी तो रास्ते में डाकुओं ने उसे लूटने की कोशिश की। यहीं इस वणिक पुत्री की रक्षा करते हुए मेहताबसिंह ने प्रजा की रक्षा के लिए अपना बलिदान देकर वंश परम्परा को न केवल कायम रखा बल्कि अपना नाम इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित करवा दिया। देवगाँव की सीमा में मेहताबसिंह पर चबूतरा बना हुआ है, जिस पर देवली लगी हुई है।

वर्तमान में जहाँ उदयसिंहजी के वंशजों की कोटड़ियां बनी हुई हैं, वहाँ बालाजी की बणी थी और वहाँ बाघसिंहजी की कोटड़ी के सामने स्थित बालाजी का स्थान प्राचीन है। इसी वजह से कोटड़ियों में मांस–दारू का सेवन नहीं होता था। मांसाहारी भोजन नोहरों में बनता था और

वहीं खान-पान भी होता था। यह परम्पराएँ आज टूटती हुई नजर आ रही हैं। इस पर श्री सवाईसिंह धमोरा ने लिखा है -

कदेन चढ़तो कोटड्यां, मद्य मांस व्यवहार।
काण टुटता टुट गया, भोम्या भोमी चार।।

उपरोक्त शेखावत संग्रामसिंह का शाका अपने पूर्वज महाराव शेखाजी के पदचिन्हों पर चलते हुए नारी सम्मान के रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग कर स्वर्गारोहण का अनूठा उदाहरण है। महाराव शेखाजी ने भी घाटवा के युद्ध में नारी सम्मान के रक्षार्थ अपने नजदीकी रिश्तेदार गौड़ राजपूत सरदारों से युद्ध कर उन्हें दण्डित करते अपने दो पुत्रों दुर्गाजी एवं पूरणजी के साथ बलिदान दिया। उस अद्‌भुत गाथा का गान कवियों, इतिहासकारों एवं लेखकों ने अपनी वाणी तथा कलम के माध्यम से स्वर्णिम अक्षरों में लिखकर किया है। शेखावतों के गौरवशाली इतिहास में तत्कालीन शासकों द्वारा प्रजाजन के मान-सम्मान को कायम रखने तथा प्रजापालक शासक के रूप में जनहित में लिए गये निर्णय उनके संस्कारों की उच्चतम पराकाष्ठा है। जिसे शेखाजी के वंशजों को न केवल याद रखने बल्कि जब भी देश, धर्म तथा मानवता पर संकट आये चरितार्थ करने की आवश्यकता है।

धर रहसी रहसी धरम, रहसी कुल री लाज।
शेखावतां सत मार्ग बढ़ो, गोपीनाथ री साख।।

❑

काम करो

- ईश्वरसिंह ढीमा

काम करो
बंधु काम करो
पत्थर तोड़ो पत्थर जोड़ो
बोझ उठाओ कंधे पर
ईर्षा द्वेष आलस क्रोध, छोड़
ध्यान लगाओ धन्धे पर।
जूते कपड़े चूना लोहा
धान औजार सब कुछ बेचो
नींद छोड़ कर्म धनुष का
जोर लगाकर कमान खेंचो
कुरुक्षेत्र के तुम अर्जुन हो
विजय तुम्हारी राह देखती
त्यागो शर्म तोड़ो रेखा
जाति अगर कोई खेंचती
हम हैं क्षत्रिय धर्म हमारा
आठो पहर जागते रहना
सेवा रक्षा मर्यादा हित
चौसठ घड़ी भागते रहना
समय किसी का नहीं कभी था
और कभी न हो पाएगा
स्वेद कणों से सींचे धरती
वक्त उसी का गीत गाएगा।
इतिहासों के पन्नों पर
लिखा यही है अक्षर अक्षर
जो जागेगा कर्म पथ पर
वही भोगेगा वसुन्धरा
बाकी सब तो कुत्ते बन्दर
बन कर ही रह जायेंगे,
मालिक और मदारी कोई
पट्टे डाल घुमाएँगे।
कर्म करो बन्धु कर्म करो।

* * *

विचार-सरिता

(पञ्चषष्टिः लहरी)

– विचारक

हजारों वर्षों से और आज का विज्ञान भी इस एक महत्त्वपूर्ण खोज में लगा है कि-परमात्मा कहाँ है? जिन्होंने परमात्मा को अनुभूत किया है, उनका कहना है कि यह प्रश्न ही गलत है कि-परमात्मा कहाँ है? प्रश्न तो यह होना चाहिए कि परमात्मा कहाँ नहीं है? जो सर्वदेशी है, सर्वत्र है, उसके लिए यह पूछना कि वह कहाँ है? यह तो कबीर की इस बात को चरितार्थ कर रही है कि-'जल में मीन प्यासी, मोहे देखत आवे हाँसी।' हम परमात्मा में ही हैं। परमात्मा से घिरे हुए हैं। जिस प्रकार आकाश के बारे में कोई पूछे कि आकाश कहाँ है और हम ऊपर की ओर नीलपृष्ठ वाले कड़ाह की तरह घिरे हुए दृश्य को आकाश का परिचय कराते हैं कि यह आकाश है। पर हम भूल ही जाते हैं कि हम जहाँ श्वास ले रहे हैं, हम जहाँ बोल रहे हैं वहाँ भी आकाश है। यदि वहाँ आकाश न होता तो शब्द की आवाज हमारे कानों तक पहुँच ही नहीं पाती। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि आकाश हमारे चारों ओर है और हम आकाश से सदैव घिरे हुए हैं।

आकाश की भाँति परमात्मा भी हमारे भीतर-बाहर सदैव उपस्थित है। यदि परमात्मा नहीं होता तो हमें शब्दादि विषयों का ज्ञान कराने की शक्ति कहाँ से आती। जिस परमात्म देव की हम खोज में भटक रहे हैं, वे कहीं दूर नहीं रहते। सदा शरीर में ही स्थित हैं और चिन्मय (चेतन) रूप से विख्यात हैं। ये ही चिन्मय चन्द्रशेखर शिव हैं। ये ही चिन्मय गरुडवाहन विष्णु हैं। ये ही चिन्मय सूर्य हैं और ये ही चिन्मय ब्रह्मा हैं। इस चिन्मय परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने पर हृदय में धंसे अज्ञान की निवृति हो जाती है और वह जीवात्मा समस्त दु:खों से निवृत होकर परमानंद को प्राप्त हो जाता है।

जो परम चिन्मय होने के कारण अत्यन्त सूक्ष्म होकर भी अज्ञानी जनों की दृष्टि में अविज्ञ होने के कारण उन्हें परम शान्ति से वंचित ही रहना पड़ता है। जिस प्रकार मणिधारी सर्प अपने उस मणि के प्रकाश गुण को तो जानता है, अत: उस मणि को किसी कंदरा या गुफा में ले जाकर रख देता है तो उसके प्रकाश गुण के कारण कीट पतंगे उस मणि के प्रकाश की तरफ भागे चले आते हैं और उस सर्प को कहीं भटकना नहीं पड़ता तथा उसे वहीं बैठे-बैठे ही आहार की प्राप्ति होती रहती है। लेकिन उस मणि में एक आनंद गुण भी है जिसे वह सर्प होते हुए भी नहीं जानता तथा सदैव दु:खों से घिरा रहता है। जैसे रूपहीन आकाश में भ्रमवश नील, पीत आदि वर्णों की प्रतीति होती है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दमय ब्रह्म में यह जगत रूपी दृश्य की भ्रमात्मक प्रतीति हो रही है। इस भ्रम के अत्यन्ताभाव के ज्ञान में यदि पूरी दृढ़ता सिद्ध हो जाए तो तत्काल ब्रह्म के स्वप्न का बोध हो जाता है, दूसरे किसी कर्म से सम्भव ही नहीं। जिस ज्ञानी पुरुष को उस चिन्मय परमात्मा का बोध हो जाता है, वह परमात्मा उस जानने वाले पुरुष का आत्मा ही हो जाता है। जब तक इस जगत् नामक दृश्य की अपनी सत्ता का अत्यन्ताभाव अथवा मिथ्यात्व सिद्ध नहीं हो जाता, तब तक परम तत्वरूप परमात्मा को कभी कोई जान नहीं सकता। असत् पदार्थ की कोई सत्ता नहीं होती और सत् वस्तु का कभी अभाव नहीं होता। यह जो विस्तृत जगत दिखायी देता है, यह कभी स्वभाव से उत्पन्न हुआ ही नहीं। यह चिन्मय आत्मा में कल्पित भास रहा है। जाग्रत में जिस जगत् की प्रतीति हो रही है, स्वप्न व सुषोप्ति में जिसका अभाव हो जाता है, जो कि हम सबकी अनुभूति में है। इससे यह सिद्ध होता है कि तीन ही काल में जिसकी मौजूदगी न रहे वह सत्य कैसे हो सकता है? अर्थात् ब्रह्म के अतिरिक्त अलग से जो कुछ भ्रान्तिवश प्रतीत हो रहा है, वह जगत् न कभी उत्पन्न हुआ, न है और न उसकी कोई सत्ता ही है। जैसे सुवर्ण में कल्पित कटक-कुण्डल आदि का सुवर्ण-दृष्टि से अभाव ही है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्म में कल्पित जगत का ब्रह्मदृष्टि से अभाव ही सिद्ध होता है। अत: इसके परिमार्जन में इसे असत् समझ लेने में कौनसा परिश्रम है?

जगत् के मिथ्या होने में और भी कई दृष्टान्त हैं जिनसे समझा जा सकता है कि दृष्टि से दिखने वाली हर वस्तु सत्य सिद्ध नहीं हो सकती। जैसे वन्ध्या के पुत्र नहीं होता, मरुभूमि में जल की सरिता नहीं बह सकती और जैसे आकाश में मोतियों की माला नहीं होती, उसी तरह जगत् रूप भ्रूण की भी कोई सत्ता नहीं है। यह जो कुछ दिखायी देता है, वह सब रोग-शोक से रहित ब्रह्म ही है।

ओम् तत् सत्! ओम् तत् सत्!! ओम् तत् सत्!!!

पिता

– डीगेन्द्र प्रतापसिंह बेमला

संतान होने पर पिता बहुत खुशियाँ मनाता है
बचपन से ही हर बुरी आदतों से उसे बचाता है।
तुतलाते हैं जब हम वो हमारी वह भाषा भी समझ जाता है
रोता देख हमें उसका भी मन छटपटाता है।
बच्चे की हर मुराद को पूरा करने के लिए वो अपना पूरा जोर लगाता है
जितनी होती है क्षमता उसकी वो सब उससे ही अधिक कर जाता है।
बचपन में जो अँगुली पकड़ कर चलना तुम्हें सीखाता है
प्यार करता है बहुत पर हमेशा डांट फटकार लगाता है।
रोते हुए बच्चे को पढ़ने के लिए वह स्कूल में छोड़ जाता है
उसका मन भी अपने बच्चे को ऐसे छोड़ कर बहुत घबराता है।
तुम्हें हंसता देख कर अपने सब गम भूल वो जाता है
तुम्हें सुखी रखने के लिए हर गम का बोझ वो उठाता है।
चाहता है तुम्हारा अच्छा भविष्य इसलिए वो अपना पूरा जोर लगाता है
तुम्हारी हर छोटी छोटी खुशी का वो मन में हर दिन जश्न मनाता है।
खुद तपता है धूप में वो पर सुनहरा तुम्हारा जीवन बनाता है
भले ही बारिश हो या सर्दी वो हर मुश्किल से तुम्हें बचाता है।
थोड़ा कष्टों में रखकर वो तुम्हें स्वावलम्बी बनना सिखाता है
कभी-कभी अभावों में रखकर तुम्हें चीजों की अहमियत समझाता है।
तुम्हें मेहनत करते देख कर उसका जीवन हर्षाता है
खुद दु:ख में रहकर तुम्हें एक खुशहाल जिन्दगी वो दिखाता है।
अपनी हर चाह को वो तुम्हारी इच्छाओं के तले दबाता है
अपने हर सपनों को वो तुम्हारे सपनों में छुपाता है।
खुद के लिए कुछ नहीं खरीदता है वो
तुम्हारी खुशी के लिए उसके बस की हर मुमकिन चीज तुम्हें दिलाता है।
खुद की परवाह न कर तुम्हें हर कष्ट से वो बचाता है
खुद को रखकर दूसरे स्थान पर प्राथमिकता तुम्हें देता है।
उठाता है वो परिवार का बोझ पर कभी न अपने कंधे झुकाता है
थकता है वो फिर भी क्षमता से अधिक जोर वो तुम्हारे लिए लगाता है।
अपने जीवन की सीख का सार वो तुम्हें बताता है
अपनी शक्ति को लगाकर शक्तिशाली तुम्हें बनाता है।
खेलता है जब वो तुम्हारे साथ जान बूझ के वो हार जाता है
तुम्हें जीत दिलाकर वो हार की भी खुशी मनाता है।
जब जब वो झुकता है जीवन में वो सिर्फ तुम्हें ऊपर उठाता है
इतना सब कर के भी वो कभी नहीं एहसान जताता है।
जिसके नाम से आते हो तुम जग में वो भगवान ही तो कहलाता है
उसके ही आशीर्वाद से हर ख्वाब तुम्हारा पूरा हो जाता है।
संतान होने पर पिता बहुत खुशियाँ मनाता है....

अपनी बात

हम संसारी लोग साधारणतया बाहर ही रहते हैं क्योंकि हमको भीतर रहने की कला नहीं आती। इसीलिए साधारणतया लोग दुखी रहते हैं। बाहर रहने का अर्थ है–वासनाओं में रहना। धन मिले, पद मिले, प्रतिष्ठा मिले, सम्मान मिले, समादर मिले। बाहर रहने का अर्थ है कि कुछ मिले, तो सुख हो। भीतर रहने का अर्थ है जिससे सुख हो सकता है, वह तो मिला ही हुआ है। बाहर रहने में सुख सशर्त है कि कुछ मिले तो सुख हो। शर्त कभी पूरी भी हो जाए तो भी सुखी हो जाएँगे, ऐसा नहीं है। एक लाख मिल जाए तो सुखी हो जाएँ, यही सोचा था और एक लाख मिल गया तो सुखी नहीं बन सके क्योंकि अब शर्त दस लाख की हो गई। वासना तृप्त नहीं होती और इसीलिए शर्तें बढती ही जाती हैं।

जिसने शर्त लगा दी सुखी होने की, वह चूक गया, क्योंकि सुख तो बेशर्त मिला हुआ है। सुख हमारा स्वभाव है। सुख हम लेकर आए हैं। सुख हमारे भीतर बसा है और खोज हम बाहर रहे हैं। शर्तें लगा दी हमने। बाहर खोजना है तो शर्त लगानी पड़ती है, नहीं तो खोजेंगे क्या? खोज का अर्थ होता है, शर्त पूरी करने का उपाय। कोई कहे कि मैं तो सरकार में मंत्री बन जाऊँ तो सुख ही सुख है। अब इस शर्त को पूरी करने के लिए लग गया। पहले कहीं से विधायक बने तो उस दौड़ में पहुँचें। विधायक बनना आसान तो नहीं। वर्षों तक लगा रहे और तब जाकर किसी राजनैतिक दल की टिकट मिले। टिकट मिल गई तो भी जीतना आसान तो नहीं और हार जाए तो आधी से ज्यादा जिन्दगी तो इस भागदौड़ में ही गुजर गई और सुख तो मिला नहीं क्योंकि शर्त पूरी नहीं हुई। आगे भी कितने ही जुगाड़ कर अगर वह विधायक भी बन गया तो आवश्यक नहीं कि मंत्री बन भी जाए।

राजनीति की चक्की पीसते-पीसते मंत्री पद की आशा में उम्र ढलने लग गई और अब अगर बिल्ली के भाग का छींका टूट भी जाए तो भी अब 60-65 वर्ष तक दुख की आदत का जिसने सपना देखा है–सतत, अहर्निश, सुबह और शाम, जागते और सोते एक ही सपना देखा है–मंत्री बन जाऊँ और आज वह बन भी गया तो भी सुखी नहीं हो सकता क्योंकि वह जो चित्त दुख में रहने का आदी हो गया है, उसे कैसे छोड़े? ऐसा तो है नहीं कि कपड़ा ओढ रखा है जिसको उतार कर रख दिया। अब तो दुख उसकी हड्डी–माँस–मज्जा हो गया। अब दुख को उतारना बड़ा मुश्किल हो जाएगा। तो मन नये दुख के आयोजन कर लेगा। कोई वासना पूरी नहीं होती क्योंकि जब तक पूरी होने का समय आता है तब तक दुख आदत हो जाता है। नया प्रक्षेपण कर लिया जाता है।

इस बात की तरफ हमारा ध्यान बहुत कम जाता है कि जो चीज मिल जाती है, उसी दिन से वह व्यर्थ हो जाती है। उसी दिन दूसरी योजना बननी प्रारम्भ हो जाती है। मन नये सपने देखने लगता है। और आगे कैसे पहुँच जाऊँ। हमने नई शर्त लगा दी। शर्त को जिन्दगी भर आगे हटाते जाएंगे और दुखी रहेंगे।

सुख बेशर्त होता है। उसकी कोई शर्त नहीं। जिसको यह समझ में आ गया कि सुख बेशर्त है, वह तत्क्षण भीतर मुड़ जाता है। शर्तें बाहर ही हैं। भीतर शर्त पूरी कैसे करेंगे। भीतर न धन, न पद पैदा कर सकते। आँख बन्द कर बैठे-बैठे मंत्री कैसे बनेंगे। कैसे जगत में ख्याति होगी। नहीं भीतर कोई शर्त पूरी नहीं हो सकती। भीतर तो वही जाएगा जिसने शर्त की मूढता देख ली है। जिसने देखा कि सब शर्तें पूरी हो जाएँ तो भी कुछ पूरा नहीं होता। जिसे सत्य दिखाई पड़ गया वही भीतर जा सकता है। जो भीतर गया उसने सुख पाया, क्योंकि भीतर सुख मौजूद है। सुख हमारा स्वभाव है।

सांसारिक समस्त दायित्व कर्तव्य समझकर निभाते रहें पर लालसा, वासना न रखें और भीतर, मन में झाँकने का प्रयास करें। संघ का अष्ट-सूत्री कार्यक्रम दैनिक कार्यों की रूपरेखा देते हुए अन्त में भीतर झांकने के लिए ही समाधि का सूत्र देता है। सोने से पूर्व आँख बन्द कर शान्त बैठें और भीतर ही रम जाएँ। ❑

मेहनत आपकी मार्गदर्शन हमारा...
सर्वोदय
अकादमी
सभी नये बैच प्रारम्भ
सुबह - दोपहर - सायं
नगेन्द्रसिंह भाटी (जोधपुर)
SI कॉनिस्टेबल RAS पटवारी REET L-1 L-2
सदर थाना, डूंगरपुर Call : 8824616606
ब्रांच : हिरणमगरी सेक्टर 04, उदयपुर

Nobles Properties
& Developers
Fateh Singh Chundawat
9829081971
Bhagwat Singh Chundawat
9929707933
31, Ostwal Nagar, Opp. Rajasthan Patrika,
Sunderwas, Udaipur-313002
Email : fschundawat@gmail.com

सूर्यनगरी
कूलदीप सिंह रणसी
पुरुषों का सम्पूर्ण वैवाहिक परिधान
शेरवानी, अचकन, सूट, हन्टिग-प्रिन्टेड शर्ट, कुर्ता पायजामा,
राजपूती पोशाक, ब्रीचेस, साफा, जोधपुरी सूट
दुकान नं. 3, बालाजी कॉम्पलेक्स, खातीपुरा सर्किल, जयपुर मो. 91-8829999911, 9251999919
Email : ksingh999911@gmail.com | Website : www.suryanagari.in
suryanagarijpr
@suryanagaribykuldeep

देव नगरी सिरोही से चंद्रवीर सिंह विरवाड़ा व सूरजपाल सिंह सादलवा का राजस्थान प्रशासनिक सेवा (RAS) में चयन होने पर बहुत-बहुत बधाई एवं उज्जवल भविष्य की हार्दिक शुभकामनाएं।

सूरजपाल सिंह देवड़ा
गाँव- सादलवा तहसील- पिंडवाड़ा
जिला- सिरोही

चंद्रवीर सिंह देवड़ा
गाँव- वीरवाड़ा तहसील- पिंडवाड़ा
जिला- सिरोही

-: शुभेच्छु :-

श्रवण सिंह रुखाडा, देवराज सिंह मांडाणी (युवा व्यवसायी), राजेंद्र सिंह सनवाड़ा R, Er. गुलाब सिंह मंडार, शक्ति सिंह मांडाणी (युवा व्यवसायी), गणपत सिंह देवड़ा, सिरोही बीजेपी किसान मोर्चा जिला अध्यक्ष शैलेन्द्र सिंह उथमण, परबत सिंह भारजा, वीरेंद्र सिंह सिंद्रथ, अजीत सिंह रूखाडा, शेर सिंह अंदौर विजयपाल सिंह चड़वाल, मांगू सिंह बावली, एडवोकेट भेरूपाल सिंह नरसाणा, डॉ. उदय सिंह डिंगार, छैल सिंह अणगौर (PTI) एडवोकेट गजेंद्र सिंह रुखाडा, योगेंद्र सिंह सिणधरा, श्रवण सिह जेतु (युवा व्यवसायी), कमल सिंह केसुआ (भारतीय वायु सेना)

सितम्बर सन् 2021
वर्ष : 58, अंक : 09

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह